ओ३म्

ब्रह्मचारिमेधाव्रतविरचितम्—

प्रकृतिसौन्दर्यम् ।

(नाटकम्)
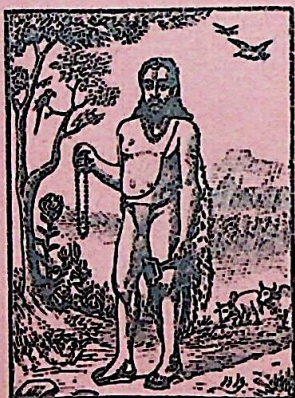
अनुवादक,

श्रुतबन्धु शास्त्री.

ओ३म्

प्रकृतिसौन्दर्यम् ।

लेखक

पण्डित मेधाव्रत कविरत्न

प्रिंसिपल आर्य्य–कन्या महाविद्यालय, बड़ोदा ।

अनुवादक,

पण्डित श्रुतबन्धु शास्त्री, वेदतीर्थ

उपाध्याय आर्य्य–कन्या महाविद्यालय, बड़ोदा ।

प्रकाशक,

सत्यव्रत

मंत्री आर्य्य–समाज, येवला (नासिक)

संवत् १९९०, सन् १९३४.

द्वितीयावृत्तिः] [मूल्य १)

प्रकाशक
सत्यव्रत
मंत्री आर्य्य-समाज,
येवला (नासिक.)

मुद्रक
रामचंद्र येसु शेडगे,
निर्णयसागर प्रेस, २६–२८
कोलभाट लेन, मुंबई.

समर्पणम्

याऽस्माकं जननीव बाल्यसुहृदां संपालयित्री सदा
विद्यादुग्धचयैश्च या बटुवराणां वर्द्धयित्री वरम्।
यस्या अङ्कमुपास्य चात्मनि तृणं स्वर्गं हि मन्यामहे
तस्या अर्प्यत एष पादयुगले काव्यप्रसूनाञ्जलिः॥

सरस्वतीनन्दनो मेधाव्रतः।

सोऽयमनुवादो—

यत्कृपातो मया लब्धा विद्या मङ्गलकारिणी।
अर्प्यते गुरुवर्य्य-श्रीविशुद्धानन्दयोगिने॥

विनीतेन श्रुतबन्धुना।
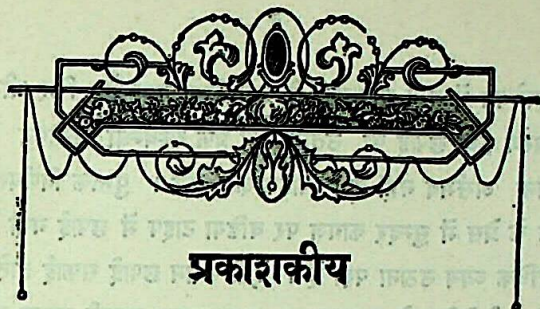
प्रकाशकीय

इस ग्रन्थ को मेरे पूज्य भ्राता श्रीमेधाव्रत जी ने गुरुकुलीय जीवन के मध्य भाग में रचा था। इस ग्रन्थ पर उस समय गुरुकुल के विद्वद्गण एवं बाहर की पण्डित मण्डली ने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की थी। गुरुकुल के वार्षिकोत्सव पर आर्य्य-समाज के सुप्रसिद्ध विद्वान् महा० श्री स्वामी अच्युतानन्द सरस्वती जी ने लेखक को स्वर्ण पदक प्रदान किया था। आर्य्य-समाज के दिग्गज विद्वान् स्वर्गीय पं० शिवशंकर शर्मा काव्यतीर्थ, स्व० पं० तुलसीराम स्वामी, दर्शन-शिरोमणि पं० हरिप्रसाद जी वैदिक मुनि एवं पं० श्री घासीराम जी एम्. ए. आदिने इस रचना पर मुग्ध होकर लेखक को बधाइयाँ दी थीं। कुछ दिनों बाद गुरुकुल वृन्दावन की विद्या परिषद् ने इसे 'प्रकृतिसौन्दर्य्यम्' के नाम से प्रकाशित किया। सब प्रतियों के समाप्त हो जाने पर बहुत दिनों तक ग्रन्थ की द्वितीयावृत्ति न हो सकी। बीच बीच में सहृदय सज्जनों की ओर से ग्रन्थ की माँग आती रही, परन्तु कतिपय कारणों से ग्रन्थ न छप सका।

इधर कुछ दिनों से भ्राता जी के साथ बिहार निवासी पं० श्रुतबन्धुजी शास्त्री वेदतीर्थ को बड़ोदा आर्य्य-कन्या महाविद्यालय में सहाध्यापन का सुअवसर प्राप्त हुआ। शास्त्री जी ने भ्राता जी से इस पुस्तक को हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित करने का अनुरोध किया। अनुवाद का भार शास्त्री जी ने स्वयं उठा लिया। ग्रन्थ के हिन्दी प्रूफ देखने में काशी विश्वविद्यालय के सुयोग्य स्नातक श्रीगुप्तनाथ सिंहजी बी. ए. ने सहायता देकर मुझे उपकृत किया है, अतः दोनों महानुभावों को मैं हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

प्रूफ संशोधन में बड़ी सावधानी से काम लिया गया है, फिर भी प्रेस दूर होने के कारण तथा छपाई की उतावली में प्रूफ सम्बन्धी कतिपय अशुद्धियों का रह जाना असंभव नहीं है। पाठक क्षमा करें। पुस्तक निर्णयसागर जैसे उच्च कोटि के प्रेस में सुन्दर कागज पर वढिया टाइप में छपाई गयी है। इस से हमें अधिक व्यय उठाना पड़ा है। ऐसी उत्तम छपाई सफाई होते हुए भी साहित्य सेवा से प्रेरित होकर पुस्तक का मूल्य लागत मात्रही रक्खा गया है।

विनीत

सत्यव्रत

मंत्री आर्य-समाज येवला

(नासिक).

ग्रन्थकार,

आचार्य मेधाव्रत कविरत्न.
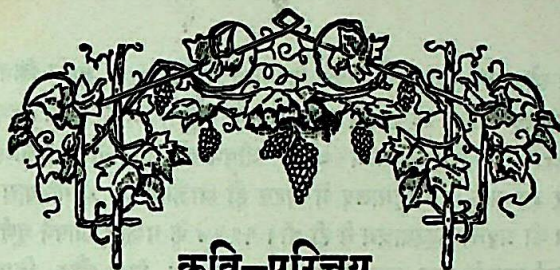
कवि–परिचय

मस्तिष्क के लिए उर्व्वरा–भूमि महाराष्ट्र प्रान्तान्तर्गत जिला नासिक के प्रसिद्ध नगर 'येवले, में जगजीवन जी एक प्रसिद्ध मध्यवित्त गृहस्थ थे। इनकी धर्मपत्नी का नाम श्रीमती सरस्वती देवी था। सरस्वती देवी मराठी, गुजराती एवं हिन्दी भाषा जानती थीं। प्रारंभ में यह दम्पती सनातन धर्म के सिद्धान्तों पर विश्वास रखते थे। संन्यासियों एवं अतिथियों की सेवा की भावना दोनों ही में पर्य्याप्त मात्रा में विद्यमान थी। श्रीसरस्वती देवी बड़ीही पुत्र-वत्सला, साध्वी धर्मपरायणा एवं गृह सम्बन्धी कार्य्यों में सुचतुरा थीं। कुछ ही दिनों के पश्चात् आर्य्य–समाज के प्रसिद्ध विद्वान् स्वर्गीय स्वामी नित्यानंद जी एवं स्वर्गस्थ श्री० पं० बालकृष्ण जी के व्याख्यानों से प्रभावित होकर यह कुटुम्ब आर्य्य–समाज में दीक्षित हुआ। आर्य्य–समाज में प्रवेश करने के पश्चात् इन दोनों की धार्मिक–भावना और भी अधिक जागृत हो उठी। श्रीजगजीवन जी ने आर्य्य–समाज के संपूर्ण साहित्य का सम्यक् रीति से आलोडन किया। आपका जीवन क्रियात्मक था। गृहस्थ में रह कर भी स्वाध्याय, यम, नियमादि का पालन करना आप अपना कर्तव्य समझते थे।

श्रीमती सरस्वती देवी यद्यपि बडी ही सन्तान वत्सला थीं, तो भी पुत्रों की शिक्षा दीक्षा में आप झूठी मोह माया से प्रभावित नहीं होती थीं; यही कारण था कि उस समय, जब कि देश में गुरुकुल की स्थापना मात्र हुई थी, अभी गुरुकुलों के परिणामों से जनता अनभिज्ञ थी, तब भी इस माता ने अत्यन्त सुदूर, तार्किक शिरोमणि स्व०स्वामी श्रीदर्शनानन्दजी संस्थापित सर्व प्रथम गुरुकुल सिकन्दराबाद में अपनी सन्तानों को भेजने में किसी प्रकार की हिचकिचाहट प्रकट नहीं की; किन्तु बालकों को भेजने में और भी उत्तेजना दी। ऐसी ही माता प्रशस्ता धार्मिकी माता कहाती हैं। अस्तु.

अन्त में श्रीजगजीवनजीने धनधान्य युक्त अपने गृह और सुयोग्य दोनों

पुत्रों को छोड़ आर्य्य–आदर्श पालन के लिए वानप्रस्थाश्रम ग्रहण किया। वानप्रस्थाश्रम ग्रहण करने के छ वर्ष पश्चात् आपने चतुर्थाश्रम में प्रवेश किया। आप कहा करते थे कि "जब मैं अपने जीवन को इस योग्य बना लूँगा कि पत्तों पर रह सकूँ, तब हिमालय में अदृष्ट हो जाऊँगा"। योगाभ्यास की ओर तो आप की प्रवृत्ति गृहस्थाश्रम से ही थी। १९२४ के पश्चात् आपने पूर्णब्रह्मानन्द के प्राप्त्यर्थ सदा के लिए जन समाज से नाता तोड़ दिया और हिमालय वास करने लगे। इस समय आप कहाँ हैं, यह ज्ञात नहीं है।

ऐसे ही संस्कारी पवित्र कुल में श्रीमेधाव्रत जी को (१८९३ ता० ७ जनवरी) जन्म धारण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आपकी बुद्धि बाल्यावस्था से ही बडी कुशाग्र थी। आपके सुयोग्य पिताने, आपकी शिक्षा का प्रबन्ध 'येवला हाईस्कूल' में, किया। अपने बुद्धि चातुर्य्य से मेधाव्रत जी ने १३ वर्ष की अवस्था में मराठी भाषा की फाइनल एवं अंग्रेजी भाषा की पाँचवीं कक्षा उत्तीर्ण कर ली।

इस उमर में भी धार्मिक प्रवृत्ति के प्रति प्रेम होना "प्रसादचिह्नानिपुरःफलानि" की उक्ति के आप उदाहरण थे। पं० बालकृष्ण एवं स्वामी नित्यानन्द जी के व्याख्यानों से प्रभावित होकर आपने अपने पूज्य पिताजी से अपनी आगामी शिक्षा का प्रबन्ध गुरुकुल में कराना चाहा। सन्तान वत्सल पिताने भी पुत्र की इच्छा पूर्ण की। मेधाव्रत जी सब से आद्य गुरुकुल सिकंदराबाद में ले जाए गए। इस गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता पं० मुरारीलाल ने बालक की प्रतिभा शक्ति देख कर अवस्था अधिक होने पर भी गुरुकुल में प्रविष्ट कर लिया।

गुरुकुल सिकन्दराबाद के विद्यार्थी मण्डल में आप कुछ ही दिनों में सम्मानकी दृष्टिसे देखे जाने लगे। आप के शुद्धोच्चारण का तो अध्यापक वर्ग पर भी प्रभाव था। बादमें उक्त गुरुकुल के वृन्दावन चले आने पर आप भी वहीं आगए। इन्हों ने अपने बुद्धि बल से दो दो वर्ष का अभ्यास–क्रम एक एक वर्ष में पूरा किया।

पाँचवीं श्रेणी से ही हमारे ब्रह्मचारी मेधाव्रत जी कविताक्षेत्र में प्रवेश करते हैं और ४५ श्लोकों का 'देशोन्नति' नामक सब से पहला काव्य बनाते हैं, जो उस समय के वार्षिक वृत्तान्त में छापा जाता है। आपने सप्तमी एवं अष्टमी श्रेणियों में क्रमशः 'ब्रह्मचर्य्यशतकम्', तथा 'प्रकृतिसौन्दर्यम्' की रचना की।

गुरुकुल में निवास करते हुए ग्रीष्मावकाश में आप अपने पूज्य पिताजी के साथ पर्वतों की यात्रा किया करते थे। बद्रीनारायण और कश्मीर की यात्रा भी

आपने पिताजी के साथ ही की थी। इन यात्राओं का ही प्रभाव है कि आप प्रकृति-पर्य्यवेक्षण में छोटी अवस्था में भी एक श्रेष्ठ कवि से कम मालूम नहीं होते।

गुरुकुल में भिन्न भिन्न अवसरों पर आपने फुटकर विषयों पर भी रचना की थी। आपने इस संग्रह का नाम 'पद्यतरङ्गिणी' रक्खा है। सुयोग उपस्थित होने पर जनता के समक्ष यह पुस्तक भी उपस्थित की जायगी।

मेधाव्रत जी ने गुरुकुल वृन्दावन में द्वादश श्रेणी तक अध्ययन किया। इस अध्ययन काल में आपने व्याकरण में नवान्हिक एवं अङ्गाधिकार, साहित्य में लघुत्रयी एवं वृहत्त्रयी, तथा समस्त प्रसिद्ध काव्य, नाटक आदि, अलङ्कार ग्रन्थ, मीमांसा के अतिरिक्त सब दर्शन, दशोपनिषद् एवं यजुर्वेद आदि का अध्ययन कर लिया था। अध्ययन का तो आप को व्यसनसा था।

खेद है कि गुरुकुल जीवन में आपको वहाँ का जलवायु अनुकूल न था; अतः आप शारीरिक दृष्टि से हमेशा दुःखी रहते थे। द्वादश श्रेणी में पहुँचते पहुँचते तो आप को यकृत् और गुल्म ने भी आ दबाया, जिसका परिणाम यह हुआ कि आपको अपने प्राणों से भी प्यारी कुल भूमिको स्नातक होने से पहले ही छोड़ना पड़ा।

ऐसे सुयोग्य विद्यार्थी को स्नातक बनने से पहले ही गुरुकुल भूमि छोड़ते देख मुख्याधिष्ठाता महात्मा नारायण प्रसाद जी बडे दुःखी हुए; ब्रह्मचारी मण्डल भी दुःखी था। मुख्याधिष्ठाता जी ने आँखों में अश्रुभर मेधाव्रतजी से कहा "तुम्हारे आगे के अध्ययन से भी ज्यादा चिन्ता मुझे तुम्हारे जीवन के लिए है, परमेश्वर तुम्हारी इतनी ही विद्या सफल करे।"

गुरुकुल से घर आने पर आपका स्वास्थ्य सुधर गया। उन्हीं दिनों कोल्हापुराधीश श्री० शाहु छत्रपति महाराजा अपने राज्य में वैदिक धर्म प्रचारार्थ एक शिक्षण संस्था स्थापित करना चाहते थे, जिसमें आचार्य्य पद के लिए एक मराठी जानने वाले सुयोग्य शास्त्री की आवश्यकता थी। इस पद के लिए राज्यरत्न पं० आत्माराम जी अमृतसरी, डॉ० कल्याणदास जी देसाई एवं स्वर्गीय पं० बालकृष्णजी शर्माने पं० मेधाव्रतजी का नाम-निर्देश किया। अतएव महाराजा ने पं० जी को सानुरोध बुलाया। इस पद को आपने बडी योग्यता से निभाया। इसी बीच में इन्फ्युलेंजा के घोर आक्रमण के कारण आप को घर आ जाना पड़ा। स्वास्थ्य सुधरने पर महाराजा ने आगरेवाले श्री स्वामी परमानन्दजी

द्वारा आप को पुनः बुलाया, परन्तु उस समय आप स्वतन्त्र-रीत्या साहित्य-सेवा करना चाहते थे। फलतः आपने एक वर्ष में 'कुमुदिनी चन्द्र' नामक एक संस्कृत का बृहद् उपन्यास लिखा। इस काम से अवकाश मिलने पर आप सूरत राष्ट्रीय कालिज में हिन्दी एवं संस्कृत के अध्यापक पद पर ५ वर्ष तक विराजमान रहे।

१९२६ में पं० आनन्दप्रिय जी ने 'इटोला आर्य्य-कन्या महा विद्यालय' में आचार्य्य पद के लिए आग्रह पूर्वक पं० जी को बुलाया। सूरत राष्ट्रीय कालिज के अध्यापक, संचालक एवं विद्यार्थी आपको छोड़ना नहीं चाहते थे, किन्तु स्त्रीशिक्षा के महत्व से प्रेरित होकर आर्थिक लाभ का लोभ त्याग कर आप इटोले चले आए। कालिज छोड़ते समय आपको संस्थाकी ओरसे मानपत्र दिया गया था।

तब से अब तक स्त्री शिक्षण के क्षेत्र में आपने गुजरात प्रान्त में अपूर्व यश प्राप्त किया है। संस्थाजीवन में कार्य्य-व्यापृत रहने पर भी आप, बीच बीच में, समय मिलने पर, कुछ न कुछ साहित्य सेवा करते ही रहे। दयानन्द जन्म शताब्दी के अवसर पर पू० महा० नारायण स्वामीजी ने आपको महर्षि दयानन्द जी के गुण-गान परक 'गंगा लहरी' के ढङ्ग का एक संस्कृत काव्य रचने की आज्ञा दी। तदनुसार आपने 'दयानन्द लहरी' नामक एक भक्तिमय ललित काव्य की रचना की, जिसे शताब्दी सभाने प्रकाशित किया है।

आपने सत्यार्थप्रकाश के पञ्चम, दशम एवं एकादश समुल्लासों का संस्कृत अनुवाद भी किया, जो संस्कृतसत्यार्थप्रकाश के जन्म शताब्दी संस्करण में छप चुका है।

आप हिन्दी में भी सफलता पूर्वक कविता कर लेते हैं। आपके 'गिरिराज गौरव' नामक वर्णनात्मक हिन्दी काव्य पर पूज्य आचार्य्य पं० महावीर प्रसाद द्विवेदीजी ने प्रसन्नता प्रकट की है। आपने रुक्मिणी हरण नामक गुजराती नाटक का हिन्दी अनुवाद भी किया था, जो 'ज्योति' में प्रकाशित हो चुका है। आप सङ्गीत के भी बडे प्रेमी हैं। कन्या गुरुकुलों के योग्य सङ्गीत-शिक्षण की कोई उपयुक्त पुस्तक न देख कर आपने 'दिव्य सङ्गीतामृत' नामक सङ्गीत की एक पुस्तक लिखी, जिसे 'आर्य्यकुमार महासभा, वडोदा' ने प्रकाशित किया है।

श्रुतबन्धु शास्त्री।

इस ग्रन्थके सम्बन्ध में दो शब्द.

जिन दिनों पण्डित जी गुरुकुल की अष्टम श्रेणी में पढ़ रहे थे, उन्हीं दिनों की यह रचना है। इस पुस्तक में कवि ने अपनी बाल्य सुलभ सरलता से प्रेरित होकर प्रकृति के विविध रूपों, गिरि-कन्दराओं, नदीनिर्झरों, सागरसरोवरों, वनोपवनों, आश्रमों, पशु-पक्षियों, विविध ऋतुओं और नव नवरूप धारिणी मेघमालाओं एवं नक्षत्र मण्डलों का, आँखों देखा अत्यन्त सुन्दर स्वाभाविक और हृदयग्राही चित्र खींचा है। बहती हुई गंगा जलके समान धारावाहिक भाषा, शब्द लालित्य, वर्णन चातुर्य्य, अलङ्कार निवेशन, प्रसादगुण प्राचुर्य्य को देख कर पाठक का हृदय हर्षातिरेक से तरङ्गित हो उठता है।

यद्यपि पहले यह काव्य श्रव्य रूप में लिखा गया था, किन्तु पीछे से चारुता लाने के विचार से पात्रों की कल्पना कर के दृश्य काव्य का रूप दे दिया गया; वस्तुतः यह श्रव्य काव्य ही है। इसे इसी दृष्टि से ही पढ़ना अधिक उपयुक्त होगा।

गतवर्ष मुझे इस पुस्तक को पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसकी सरलता, स्वाभाविकता और शृंगार रहित वर्णन का मेरे हृदय पर इतना प्रभाव पड़ा कि मैंने विचारा कि, यदि यह पुस्तक गुरुकुलों के कोमलमति ब्रह्मचारी एवं ब्रह्मचारिणियों तथा निर्दोष तरुण—तरुणियों के हाथों में दी जाय तो वे सुन्दर काव्य का आनन्द भी उठा सकें और साथ ही भद्दे एवं चरित्र दूषक शृङ्गारिक वर्णनों से भी

बच जायँ। ग्रन्थ संस्कृत में होने के कारण साधारण जनता इस से लाभ नहीं उठा सकती थी; अतः मुझे इस ग्रन्थ के हिन्दी भाषानुवाद की आवश्यकता प्रतीत हुई। मैं ने अपना विचार पण्डितजी के सम्मुख रक्खा। आपने कृपा पूर्वक इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद करने की आज्ञा दे दी। निदान यह अनुवाद मूल के साथ सहृदय साहित्य प्रेमियों के करकमलों में जा रहा है। इस से एक तो मूल ग्रन्थ का भी आनन्द उठाया जा सकेगा और साथ ही भाव समझने में भी सुगमता होगी।

संस्कृत कविता का अविकल अनुवाद करना बड़ा कठिन है; अतः मैंने भी शब्दानुवाद का मोह छोड़ कर केवल भावानुवाद का ही आश्रय लिया है। मैं इस पुस्तक को अनेक प्रकार की टिप्पणियों से सुसज्जित करना चाहता था, जिस से पाठकों को और भी अधिक लाभ पहुँचता। खेद है कि अनेक कठिनाइयों के कारण ऐसा न हो सका। मैं जानता हूँ कि पुस्तक में अनेक त्रुटियाँ रह गयी हैं, एतदर्थ उदार चेता पाठक पाठिकाओं से क्षमा याचना है।

इस प्रसङ्ग पर मैं अपने सुयोग्य मित्र काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के स्नातक श्रीगुप्तनाथ सिंहजी बी.ए. को धन्यवाद दिए बिना नहीं रह सकता, जिन्होंने इस ग्रन्थकी हिन्दी देख देने की कृपा की है।

ग्राम–डेल्हवा,
मुंगेर (मगध)
बिहार प्रान्त.
१ जुलाई १९३४

निवेदक
श्रुतबन्धु शास्त्री, वेदतीर्थ
उपाध्याय आर्य्य–कन्यामहा-
विद्यालय, बडोदा.

अनुवादक,

पं० श्रुतबन्धु शास्त्री, वेदतीर्थ.

॥ ओ३म् ॥
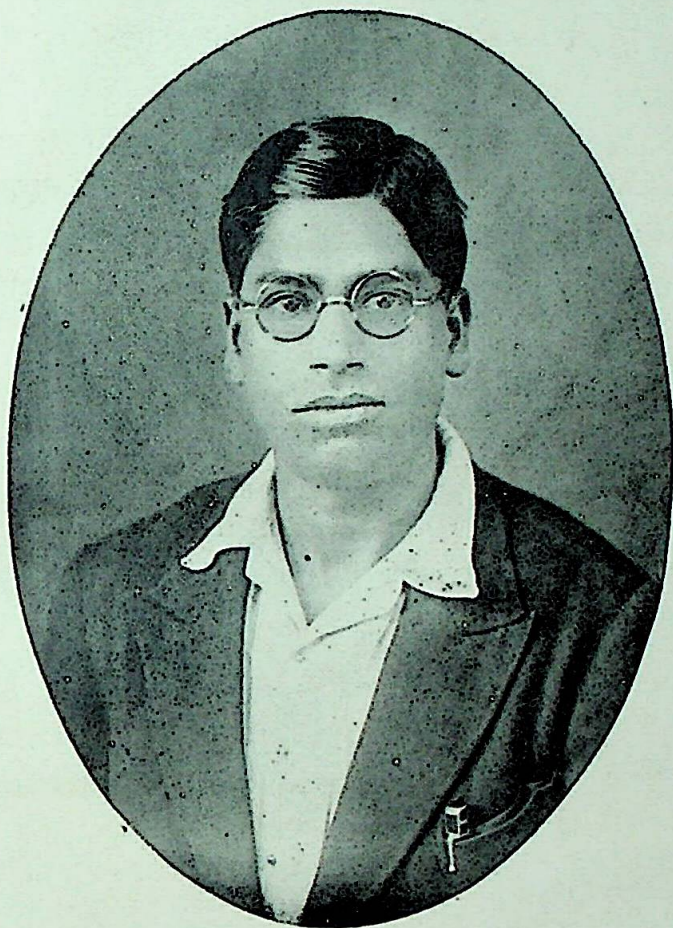
प्रकृतिसौन्दर्यम् ।

प्रथमोऽङ्कः ।

[नान्दी]

आनन्दं ब्रह्मरूपं निरुपममलं रूपणीयं निरूप्य
योगीन्द्रा इन्द्रियाणां विषयपथमितं यत्र वश्येन्द्रियास्ते ।
आत्मन्यत्यन्तमीड्यं स्फुरदमलरुचा दिव्यनेत्रेण दिव्यं
श्रेयो नैःश्रेयसं यन्निखिलनरवरा आश्रयन्ते श्रयन्ताम् ॥ १ ॥

अपिच ।

या सामग्री भुवनरचनायामुपादानहेतु-
र्या चित्राङ्गी रमयति मुहुर्लीलया मर्त्यवृन्दम् ।

ओं३म् नमोऽन्तर्यामिणे ।

भावसन्दीपिनी भाषाटीका.

[नान्दी]

जितेन्द्रिय योगीन्द्रगण, अतीन्द्रिय, अनुपम, निर्मल, दिव्य, अत्यन्त स्तुत्य, साक्षात् करणीय, आनन्दस्वरूप ब्रह्म को दिव्य नेत्रसे आत्मामें अनुभव कर के जिस मोक्ष सुख का उपभोग करते हैं, उसी निर्वाण सुख को अखिल नरनारी उपभोग करें ॥ १ ॥

तथाः—

जो प्रकृति अखिल ब्रह्माण्डकी रचना में उपादान रूप है, एवं जो सत्व-रज-तम त्रिगुणात्मिका होती हुई स्वभाव सेही बारंबार प्राणीसमूहको खिलाती रहती है,

या सर्वेषामृतुवरगणैर्नन्दयित्री जनानां
सेयं भूयान्निखिलजगतां भूयसे मङ्गलाय ॥ २ ॥

[नान्द्यन्ते]

सूत्रधारः—अलमतिपल्लवितेन । भो भो निगमागमनिपुणा उन्मीलन्नैकविधनवनवकविताकलाकलापकुशलाः कुशाग्रबुद्धयः साहित्यमर्मविदः सभासदः ! आज्ञापितोऽस्मि तत्रभवद्भिर्विद्यापरिषदलङ्करणैर्गुरुकुलैकशरणैर्गुरुचरणैः सब्रह्मचारिभिर्ब्रह्मचारिभिश्च यद्—अद्य वसन्तोत्सवावसरे किमपि रमणीयं रूपकमभिनीयतामिति ।

[क्षणमिव स्थित्वा–स्मृतिश्च नाटयित्वा–सोत्कण्ठम्]

आः । अस्ति वृन्दावनगुरुकुलब्रह्मचारी दाक्षिणात्यो मेधाव्रतोनाम कविर्द्वितीयमिव हृदयमस्माकम्, प्रकृतिरसिकस्य यस्य कृतिरभिनवा "प्रकृतिसौन्दर्यम्" नाम रूपकम् । तन्नाटयन्तो वयं सद्-

---

तथा जो छ ऋतुओं में भिन्नभिन्न रूप को धारण करती हुई मनुष्य मात्र को आनन्द देने वाली है, वही विचित्र स्वरूपा प्रकृति देवी सकल संसार के लिए कल्याणकारिणी हो ॥ २ ॥

(मंगलाचरणके पश्चात् सूत्रधारका प्रवेश)

सूत्रधारः—बहुत विस्तारसे क्या लाभ? हे वेदशास्त्रसम्पन्न खिलती हुई अनेक प्रकारकी नई नई कविता–कलामें कुशल, कुशाग्रबुद्धि, साहित्यमर्मज्ञ सभासदो! पूजनीय गुरुकुलीय विद्या–परिषद् के अलङ्कारस्वरूप गुरुजनों तथा ब्रह्मचारियों ने आज इस मंगलमय वसन्तोत्सव के प्रसङ्गपर एक सुन्दर (नाटक) अभिनय करने की मुझे आज्ञा दी है ।

(कुछ ठहर कर स्मरण सा अभिनय कर के उत्कण्ठा सहित)

हाँ ठीक, मेरे सहृदय मित्र गुरुकुल वृन्दावन के दाक्षिणात्य ब्रह्मचारी मेधाव्रतजी बड़ेही प्राकृतिक सौंदर्योपासक हैं, उनकी नई रचना 'प्रकृतिसौंदर्य' नामक नाटक

स्यानाराधयितुं यदि प्रभविष्णवो भवेम तदाऽऽत्मानं कृतार्थं मन्यामहे । (विचिन्त्य–सहर्षम्), तावत् किमपि संगीतकमनुष्ठातुं नटमाकारयामि ।

[परिक्रम्य–नेपथ्याभिमुखमवलोक्य च]

मारिष! यदि तेऽवसितो नेपथ्यविधिस्तदेहागम्यताम् ।

[प्रविश्य]

नटः—भाव! अयमस्मि । आदिश्यताम् ।

सूत्रधारः—मारिष! परमुत्कण्ठितेयं प्रकृति-सौन्दर्यदर्शनाभिलाषिणी पारिषद्यमण्डली संगीतश्रवणाय, तदारम्भणीयं किमपि संगीतकम् ।

न०—भाव! किमभिलक्ष्य गीयताम्, येन गुणगृह्येयं विदुषां मण्डली प्रहर्षवर्षिणी भवेत् ।

है; उसका अभिनय करते हुए यदि हम सामाजिकों को प्रसन्न कर सके तो हम अपने को धन्य धन्य मानेंगे ।

(विचार कर हर्षसहित) अच्छा तो तब तक कुछ संगीतके लिए नटको बुलाता हूँ । (घूमकर और नेपथ्यकी ओर देखकर)

मित्र, यदि आप नाटकीय वेष धारण कर चुके तो रंगमंच पर आइए. (प्रवेश करके)

नटः—महोदय! मैं तैयार हूँ, आज्ञा दीजिए ।

सूत्रधारः—सामाजिक सभासद प्रकृतिसौंदर्यावलोकनकी इच्छासे सङ्गीत सुनने के लिए अत्यन्त लालायित है. तो कोई सुन्दर गाना आरंभ कीजिए ।

नटः—महोदय! किस विषयका गायन करूँ? जिससे गुणग्राही सभासद आनन्दसागरमें निमग्न हो जाँय ।

सू०—तमेव जगन्निषेव्यचरणं तमोदलविदारणं प्रमोदकारणं भग-
वन्तं सहस्रकिरणं समुद्दिश्य संगीयताम् ।

न०—तथा । (इति गायति)

श्रुतिभानूदयोऽयं—
जगदानन्दयतीह नितान्तम् ॥ ध्रुवम् ॥
ध्वान्तमपास्य ततं जगतीदं
तनुते मोदमनन्तम् ।
अज्ञानाहतमानवचित्तं
ज्ञानविकासिसुशान्तम् ॥ श्रुतिभा०— ॥
निद्राणं जनपङ्कजरविन्दं
ध्वान्तनिशीह निशान्तम् ।
उन्निद्रं रचयन्नतितान्तं
भासयतीह भवान्तम् ॥ श्रुतिभा०— ॥
सुन्दरकाव्यमहीरुहरम्यं
कृतकविकोकिलगीतम् ।

सूत्रधारः—जगत् वन्दित चरण अज्ञान–अन्धकार निवारक, आनन्ददायक, अनेक शाखा सुशोभित भगवान् वेद भास्कर के सम्बन्धमें ही कुछ गाइए ।

नटः—अच्छी बात (गाता है)

इस संसाररूप आकाशमें वेदरूपी सूर्य्य जगत् को अत्यन्त आनन्दित करता है, ब्रह्माण्डमें फैले हुए अज्ञान अंधकार को दूर कर के असीम आनन्द फैलाता है, अज्ञानता के कारण दुःखित मानव समाज के मन को ज्ञान से प्रफुल्ल और प्रशान्त बनाता है । अज्ञान–निशा में सुप्त मानव समाजरूपी कमल को उषाकाल में विक-सित करता हुआ त्रिभुवन को प्रकाशित करता है ।

सुन्दर कवितारूपी तरुलताओं से मनोहर, कविरूपी कोकिलाओं के गान से गुञ्जित, वैदिक वाटिका को ज्ञानप्रभा से आलोकित कर रहा है । कवित कमलिनी

भाभिर्मण्डितमातन्वानः
सारस्वतविपिनान्तम् ॥ श्रुतिभा०— ॥

कविताम्भोरुहवृन्दमरन्दं
रसयन् रसिकमिलिन्दम् ।
स्तुतनृविहङ्गमचारुचरित्रः
सानन्दं हृदि शान्तम् ॥ श्रुतिभा०— ॥

पीताम्बरधरवर्णिवरेण्यं
गुरुकुलमात्मशरण्यम् ।
आत्मद्युतिभिर्विदधदमन्दं
मोदयुतं स सुकान्तम् ॥ श्रुतिभा०— ॥

निगममन्त्रसुमगन्धवहोऽयं
भुवने शान्तिसमीरः ।
मन्दमन्दमिह वहति वनान्तं
विदधत् सुमितलतान्तम् ॥ श्रुतिभा०— ॥ ३ ॥

के रसको रसिक भ्रमरों को चखाती हुई मनुष्यरूपी पक्षीगणों से स्तूयमान चारु चरित्रवाली यह वैदिक प्रभा मानव हृदय को शान्त कर रही है। अपने शरणागत, पीताम्वर वेषधारी श्रेष्ठ ब्रह्मचारियोंसे युक्त, गुरुकुल को अपने अलौकिक ज्ञानालोकसे आनन्दित और प्रकाशित कर रही है। उसी वैदिक प्रभा से विकसित वेद मंत्ररूपी पुष्पों के सुगन्धको फैलानेवाला शान्ति-समीर इस संसारमें मानवरूपी वनप्रदेश को मानवरूपी कुसुमलताओं से सुन्दर बनाता हुआ बह रहा है ॥ ३ ॥

सू०—मारिष ! साधु गीतम्, साधु गीतम् । पश्य, सेयं संगीतरागहृतहृदया सहृदया श्रोतृमण्डली आलेख्यलिखितेव लक्ष्यते । तदधुना कतमन्नाटकं नाटयितव्यम् ।

न०—ननु तदेव प्रकृतिसौन्दर्यं नाम नाटकम्, यदर्थमेष नेपथ्यविधिर्विधीयते ।

सू०—मारिष ! सम्यक् स्मारितोऽस्मि । अस्मिन् क्षणे विस्मृतं खलु मया । कुतः

मधुररागरवेण तवामुना
मम मनो नितरां परिमोहितम् ।
प्रकृतिसुन्दरनूतनदृश्यतः
क्षितिभुजोऽस्य यथेन्दुनिभश्रियः ॥ ४ ॥

नटः—तदागम्यताम् । करणीयान्तरकरणाय सज्जीभवावः ।

[इति निष्क्रान्तौ]

प्रस्तावना ।

सूत्रधारः—मित्र ! वाह ! बहुत अच्छा गाया । देखिए आपके गायनसे मुग्ध हुई यह सहृदय श्रोतृमण्डली चित्र की तरह शान्त सी दीखती है, तो इस समय अब किस नाटकका अभिनय किया जाय ।

नटः—हाँ, वही 'प्रकृतिसौंदर्यनाटक' खेला जाय जिसके लिए यह सब तैयारियाँ हो रही हैं ।

सूत्रधारः—ठीक याद दिलाया, मैं तो भूलही गया था । क्योंकिः—
आपके इस मीठे रागसे मेरा मन मुग्ध हो गया था, जैसे प्रकृतिके सुन्दर नए नए दृश्यों से चन्द्रतुल्य कान्तिवाले इस नृपति का मन मोहित हो गया है ॥४॥

नटः—अच्छा तो आइए, अपने कार्य्यके लिए तैयार हो जाँय ।

(दोनों जाते हैं)

(प्रस्तावना समाप्त)

[ततः प्रविशति प्रियवयस्येन सह विमानाधिरूढो राजा चन्द्रमौलिः]

राजा—(समन्ततोऽवलोक्य—सहर्षम्) अहो, जगदेकनियन्तुर्जगदीश्वरस्य किमपि निसर्गाश्चर्यसौन्दर्यं निखिलसर्गचातुर्यम् ।

[सविनयाञ्जलिः]

सूर्याचन्द्रमसौ दिवञ्च पृथिवीं स्वर्योऽन्तरिक्षं यथा
धाता पूर्वमकल्पयत्कविरयं वेदान् यथा निर्ममे ।
सृष्ट्यादौ विदधौ तथेह सकलं योऽग्रेऽपि निर्मास्यते
पूर्णानन्दचिदात्मने सुकवये तस्मै नमो ब्रह्मणे ॥ ५ ॥

[सविमर्शम्]

सखे ! चन्द्रवर्ण ! पश्य पश्य—

भास्वानाक्रमते क्रमेण भगवानस्तं पुनर्गच्छति
प्रातस्सायमिमं क्रमं प्रतिदिनं ब्रध्नो निबध्नाति यत् ।

(विमानारूढ महाराज चन्द्रमौलि प्रिय मित्र के साथ आते हैं)

राजाः—(चारों ओर देखकर प्रसन्नता से) अहा ! जगत् के एक मात्र नियामक जगदीश्वरका क्याही आश्चर्य्यकारक, नैसर्गिक सौंदर्य्यपूर्ण अखिल–भुवन–रचना–चातुर्य्य (विनयपूर्वक हाथ जोड़कर) जिस प्रकार परमेश्वर ने पूर्वसृष्टि में, सूर्य्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, अन्तरिक्ष, तथा प्रकाशमान लोकलोकान्तरों एवं वेदोंकी रचना की थी, वैसेही वर्तमान सृष्टि में भी पूर्ववत् ही सब पदार्थ निर्माण किए हैं, इसी प्रकार आगे भी जो बनाता रहेगा, उसी सच्चिदानन्द-स्वरूप सुकवि परब्रह्मको मेरा नमस्कार हो ॥ ५ ॥

मित्र चन्द्रवर्ण ! देखो देखोः—

यह जो सूर्य्य नियमसे उदय और अस्त होता है, और प्रतिदिन प्रातः सायं अपने नियम को पालन करता है, और यह जो चन्द्रमा वृद्धि तथा क्षय को

चन्द्रोऽयं परितो भुवं भ्रमति यद् वृद्धिक्षयौ दर्शयन्
नक्षत्रालिरियं यदेति नियमानां को नियन्तैव सः ॥ ६ ॥

चन्द्रवर्णः—देव !

किं वर्ण्यताम् अवर्णनीयस्य महनीयानुभावस्य महामहिमशालिनोऽनल्पकल्पनाकुशलस्य तस्य कौशलम्, यस्य हि जगल्ललामभूता भूतनायकस्य ।

ब्रह्माण्डे यच्चलमविचलं प्रेक्ष्यते प्रेक्षणीयं
मार्तण्डेन्दुग्रहगणचिते तैजसं पार्थिवञ्च ।
सर्वत्रैव प्रकृतिरिह सा कुर्वती कार्यचक्रं
नित्यास्तित्वं प्रथयति सदा ब्रह्मणोऽनन्तशक्तेः ॥ ७ ॥

दिखाता हुआ पृथ्वी की परिक्रमा करता रहता है, एवं यह जो नक्षत्रमाला अपनी अपनी परिधि पर घूम रही है, इन सब नियमोंका कौन नियन्ता है? हाँ समझा वही प्रजापति इन सबका नियन्ता है ॥ ६ ॥

चन्द्रवर्णः—महाराज !

सूर्य चन्द्र ग्रह गण युक्त ब्रह्माण्डमें जो कुछ चराचर तैजस पदार्थ, तथा पार्थिव दर्शनीय दृश्य दीख रहा है, उन सब में अपना कार्य्य करती हुई, जगदलङ्काररूपा प्रकृति देवी जिस चराचरके स्वामी, अनन्त शक्तिशाली ब्रह्मदेवके नित्य अस्तित्वको निरन्तर सिद्ध कर रही है, उस अवर्णनीय, अनन्त सामर्थ्यवान्, महामहिमाशाली, अनेकविध रचना में कुशल कारीगर की कारीगरी का कैसे वर्णन किया जाय ॥ ७ ॥

टिप्पणीः—श्लोक ६ में कः श्लेषात्मक पद है । कः का अर्थ कौन और प्रजापति दोनों है ।

[अन्तर्निध्याय-भगवन्तं प्रति—सानन्दम्]

नक्षत्रग्रहमण्डलेऽम्बरमणौ
बिम्बे यदिन्दोर्दिवि
सौन्दर्यं प्रकृतेः समीक्ष्य सुतरां
सौन्दर्यवारांनिधेः ।
अद्रीन्द्रे द्रुमगुल्मवल्लिवलये
प्राणिप्रकाण्डे भुवि
यत्त्वेह चराचरे जगति को
मुह्येन्न सौख्याम्बुधे ॥ ८ ॥

राजा—अयि सखे !

पश्य पश्य, समग्रातिशायिसुन्दर—

सामग्र्याः सर्गोपादाननिदानभूताया विविधरूपविमोहितनिखिलभूतायाः प्रकृतिललितायास्तस्या लावण्यम् । या च—

तुङ्गोर्वीन्द्रनितम्बकाननकुले
स्रोतःकदम्बाकुले

(ध्यान करके आनन्दसहित भगवान् के प्रति)

आकाश–स्थित सूर्य्य–मण्डल, चन्द्रबिम्ब, ग्रहगण एवं नक्षत्रचक्र में तथा पृथ्वीपर बड़े बड़े पहाड़ों, वृक्षों, सब प्रकार की लताओं एवं भिन्न भिन्न प्राणियोंमें फैले हुए प्रकृति के सौंदर्य को देखकर हे सौंदर्य्यसागर! सुखके भण्डार विभो! कौन मुग्ध नहीं हो जाता? ॥ ८ ॥

राजाः—हे मित्र!

सर्वश्रेष्ठ सुन्दरसामग्री सम्पन्न, सृष्टि के उपादान कारणभूत, अनेकरूपों से अखिल प्राणि समूह को मोहित करनेवाली निसर्गसुन्दर प्रकृति ललना का लावण्य तो देखो, जोः-

सैंकड़ों झरनोंसे युक्त उन्नत गिरि–शिखरों के वनोंमें, नीचे घने जंगलों में,

सान्द्रारण्यतटीषु सुन्दरतरौ
कल्लोलिनीनां तटे ।
नक्षत्रद्विजराजराजिगगने-
ऽम्भोराशिराशौ मुदा
देवीयं प्रकृतिर्निसर्गरुचिरा
नक्तन्दिवं दीव्यति ॥ ९ ॥

चन्द्रवर्णः—(अधो विलोक्य) देव !
दूरादर्वागवेक्ष्यताम् ।
पृथ्वीयं पृथुलाचलालिललिता द्वीपावलीमण्डिता
नानानिर्झरिणीनदीन्द्रवलिता नानार्णवावेष्टिता ।
रम्यारण्यसुरामणीयकचिता सा कन्तुजन्त्वञ्चिता
भूपेन्द्रावलिपालिता वसुमती राजन्वती राजते ॥१०॥

राजा—एषोऽहमर्वागवलोकयामि ।

[चन्द्रवर्णस्ततो विमानावनतिं नाटयति]

सुन्दर वृक्षों वाली नदियों के तटोंपर, नक्षत्र एवं चन्द्रमण्डित गगनमण्डल में, तथा विशाल सागरों के वक्षस्थलोंपर, रातदिन स्वभावसुन्दरी प्रकृतिकामिनी क्रीड़ा-कल्लोल करती ही रहती है ॥ ९ ॥

चन्द्रवर्णः—(नीचे देखकर)
(जरा नीचे दूरतक दृष्टि तो फैलाइए)
वडी वडी गिरिमालाओं से मण्डित; टापुओं से सुशोभित, अनेक नद नदियों एवं महासागरों से वेष्टित, सुन्दर सुन्दर जंगलोंकी मनोहरतासे व्याप्त, विविध प्रकारके सुन्दर प्राणियों से विभूषित, तथा वडे वडे राजाओं से लालित पालित विस्तृत वसुन्धरा दूर तक फैली हुई शोभित हो रही है ॥ १० ॥

राजाः—(अच्छा नीचे की ओर देखता हूँ)—
(इसके बाद चन्द्रवर्ण विमान नीचे उतारता है)

चन्द्रवर्णः—(गिरीन्द्रं निर्वर्ण्य—सविस्मयम्) राजानं प्रति देव ! नूनमावां बहुलहिमकुलसंकुलारण्यपुण्यभूखण्डस्य परस्सहस्रनिस्सरदमलशीतलतरजलनिर्झरपरिवृतोत्तुङ्गशृङ्गस्य हिमालयस्योपरि वर्तावहे ।

राजा—(हिमालयमालोक्य—सविमर्शाद्भुतम्) प्रिय सखे ! अगम्यानुभावोऽयं शैलराजः, यो महतां गुणैकनिलयानां परमतत्त्वैकलयानां वेदविदुषां परमात्मजुषां पापमुषां विदुषां परमपावनं मन्दिरम् ।

यमेनं—

नानाकान्तपतङ्गसङ्गिनमहो सर्वर्तुशर्मप्रदं,
सौन्दर्यैकनिधेः सुकौशलमयं लालित्यलीलागृहम् ।
शैलेन्द्रं समवेक्ष्य सा समुचितं रत्नालयं स्वालयं,
देवीयं प्रकृतिर्निसर्गरुचिरा नक्तन्दिवं दीव्यति ॥ ११ ॥

तथाहि—एते—

हिमानीशुभ्रं यद् विशदशरदभ्रं हिमगिरेः
सुशृङ्गं भात्येतत्तरुततिवृतञ्चाम्बरलिहम् ।

चन्द्रवर्णः—(पर्वतराज को देख कर विस्मय सहित) हे महाराज ! हिमाच्छादित वन की पवित्र भूमिवाले, निर्मल शीतल जल स्रावी हजारों झरनों से शोभित उन्नत शिखरवाले हिमालय के ऊपर हम लोग आगए हैं ।

राजाः—(हिमालय को देख कर आश्चर्य्य से) प्रिय मित्र ! इस शैलराज की अपार महिमा है, यही शैलराज महान् गुणों के भण्डार, वेदवेत्ता, ब्रह्मानन्द-निमग्न, पापहारक, ईश्वर भक्त विद्वानों का आश्रयस्थान है, देखिए:—

अनेक सुन्दर पक्षीगणों से सुशोभित, सब ऋतुओं में आनन्ददायक, सौंदर्य्यसागर प्रभुकी उत्तम कारीगरी का कलाभवन, तथा रत्नों के भण्डार इस हिमालय को अपना योग्य आलय समझकर निसर्गसुन्दरी प्रकृति देवी रात दिन (यहाँही) खेला करती है ॥ ११ ॥

और ये कहीं शरद ऋतु के श्वेत बादल के टुकड़ों से घिरे हुए, और कहीं

पतन्तीनां तस्मादमलसुझरीणां जलकणा-
रवेरुस्रैर्मिश्रा दधति सुरचापस्य सुरुचम् ॥ १२ ॥

(परितो विलोक्य—सकौतुकम्) चन्द्रवर्णं प्रति—वयस्य! पश्यैताः—

प्रोच्चाचलेन्द्रशिखरस्खलदम्बुधारा
वेगान्महोन्नतशिलासु समुच्छलन्त्यः।
डिण्डीरडम्बरविडम्बिजलं वमन्त्यः
क्रीडन्ति तातभवने किमु बाललीलाम् ॥ १३ ॥

चन्द्रवर्णः—(विमानवेगनाटितकेन सहर्षं निरीक्षमाणः) देव! इतो विलोकनीयम्—अस्याम्—

करिहरिहरिणानां मण्डलीमण्डितायां
नवहरिततृणानां कन्दलीपण्डितायाम्।
उपलमणिविचित्रैर्धातुभिश्चित्रितायां
विलसति यतिवृन्दं सुन्दराधित्यकायाम् ॥ १४ ॥

बर्फ के बड़े बड़े चट्टानों से ढके हुए, और कहीं वृक्षावली से आच्छादित गगन-चुम्बी हिम-गिरि-शिखर चमक रहे हैं, उन शिखरों पर से गिरते हुए स्वच्छ झरनों के जल-बिन्दु सूर्य्य किरणों से मिश्रित होकर इन्द्र धनुषकी मनोहर कान्ति को धारण कर रहे हैं ॥ १२ ॥

(चारों ओर देख कर कौतुक सहित चन्द्रवर्ण से) मित्र! देखिए:—
उन्नत गिरि शिखरों से गिरती हुई नदियाँ, बड़े वेगसे विशाल विशाल शिलाओं पर उछलती कूदती समुद्र के फेन के तुल्य जल-राशि की शोभा को दर्शाती हुई, मानों अपने पिता (हिमालय) के भवन में बालक्रीडा कर रही हों ॥ १३ ॥

चन्द्रवर्णः—(विमान को जोरसे चलाकर हर्षसे देखता हुआ)
महाराज! इधर देखिए:—
हाथी, सिंह, एवं हिरनों के झुण्डों से मण्डित नये नये तृणाङ्कुरों से सुशोभित, चित्र विचित्र रत्न धातुओं से चित्रित पर्वतराजकी शिखर भूमिमें यतिवृन्द विराज रहे हैं ॥ १४ ॥

राजा—(अंगुल्या दर्शयन्) सखे! पश्य पश्य—

जितषडसदरीणां सुन्दरीणां दरीणां
पुरत इह मुनीनां बद्धपद्मासनानाम् ।
नियमितकरणानां ध्यायतां देवमन्तः
किमपि किमपि पुण्यं मण्डलं राजतीदम् ॥ १५ ॥

चन्द्रवर्णः— (किञ्चिद् विमानावनतिं रूपयन्) देव साम्प्रतमावां पर्वत-नितम्बस्थलीमुपर्युपरि गच्छावः, तदनुभूयतां परमसुखातिशयः ।

तथाहि—

स्थले स्थलेऽमूस्स्थलपद्मपङ्क्तयो,
लसन्त्यलं स्वच्छजलं पदे पदे ।
क्षणे क्षणे निर्मलशीतलोऽनिलः
सुगन्धवीचीरुचिरान्तरान्तरा ॥ १६ ॥

राजाः—(अंगुलीसे दिखाता हुआ) मित्र! देखो इधर सुन्दर गुफाओंके प्राङ्गणमें कामक्रोध आदि छ रिपुओंको जीतनेवाले पवित्र जितेन्द्रिय मुनिमण्डल पद्मासन लगा कर अंतःकरणमें ब्रह्मका ध्यान करते हुए किसी अकथनीय कान्तिको धारण कर रहे हैं ॥ १५ ॥

चन्द्रवर्णः—(कुछ विमान नीचे उतारता हुआ) राजन्! इस समय हम लोग पर्वतराज के ऊँचे ऊँचे शिखरों के मध्यभाग में से जा रहे हैं, तो खूब आनन्द लूटिए।
स्थान स्थानमें गुलाबोंकी पंक्तियाँ, और पग पग पर निर्मल झरनें अतिशय सौंदर्य बढा रहे हैं ॥ १६ ॥

किञ्च ।

सरोन्वितं सान्द्रवनं गिरौ गिरौ
वने वने सन्ति रसालपादपाः ।
तरौ तरौ कोकिलकाकलीरवा
रवे रवे हर्षकरी सुमाधुरी ॥ १७ ॥

राजा— (चिरं विभाव्य-साश्चर्यम्) सखे !

मालाकाराहृत इह कृता सुन्दरोद्यानमाला
माकन्दादिद्रुमवलयिता केन रम्ये नगेन्द्रे ।

चन्द्रवर्णः—(सस्मितम्)

मालाकर्तुः कृतिरियमये ! तस्य जागर्ति नूनं
येनेदं तन्निखिलभुवनं निर्ममे निर्ममेण ॥ १८ ॥

राजा—सखे चन्द्रवर्ण ! विमानमवरुध्यताम्, रमणीयमितो वर्तते, अत्रैवावतराव ।

क्षण क्षणमें मन्द सुगन्ध शीतल पवनके झोंके आ रहे हैं, उनमें से कभी कभी सुगन्धिकी तरङ्गे उठ रही हैं । औरः—

प्रत्येक पर्वतमें तालाव युक्त घने जंगल हैं, वन वनमें आमकी वृक्षावलियाँ हैं, और प्रत्येक आम्रतरुपर कोकिलाओं का मधुर आलाप हो रहा है, एवं प्रत्येक आलापमें आनन्द विमुग्ध कर देनेवाली मधुरिमा है ॥ १७ ॥

राजाः—(खूब देख कर आश्चर्य्यसे)

मित्र ! आम्रादि वृक्षोंसे मण्डित यह सुन्दर बाग बिना माली के किसने बनाया !

चन्द्रवर्णः—(मुस्कराते हुए) हे राजन् ! यह उसी निर्मम मालीकी रचना है, जिसने अखिल ब्रह्माण्ड की रचना की है ॥ १८ ॥

राजाः—मित्र चन्द्रवर्ण ! विमान रोको, यहाँ की सुन्दरता अपूर्व है, इस लिए कुछ देर यहीं आनन्द करें ।

चन्द्रवर्णः—तथा! (इति विमानगतिस्तम्भं रूपयति)

(ततो विमानावतरणं नाटयतः)

राजा—(भूस्पर्शं रूपयन्) सखे! प्रालेयतुषारकणकन्दलदलिता- नामपि कन्दलितानां स्फटिकमणिखचितचित्रशिलाविचित्रिताना- मपि सुचित्रितानां शैलराजनितम्बभुवां स्वदन्तेतरां वरराजयः।

चन्द्रवर्णः—आम्, स्वदन्तेतरां मह्यमपि।

राजा—(चिरं विमृश्य-सोल्लासम्) स्वगतम्—

सन्तु क्रीडदनेकरत्नरुचयः क्रीडत्पतङ्गाङ्गनाः
प्रासादाः स्फटिकोपलावलिचिता आहार्यशोभान्विताः।
रम्यारामसुदीर्घिकालिरुचिरा हर्म्यालयो वा पुन-
र्नारोहन्ति तुलामणु क्षितिभृतां रम्यस्थलीनामिमे ॥ १९ ॥

चन्द्रवर्णः—(अच्छी बात है, विमान ठहरा लेता है)

(फिर दोनों विमान से उतरते हैं)

राजाः—(पृथ्वी का स्पर्श अनुभव कर के) मित्र! पर्वतराज के शिखर की मध्यभूमि कहीं कहीं हिमकणों से शुभ्र वर्णा है, और कहीं कहीं हरियाली से हरितवर्णा, तथा कहीं कहीं बिल्लौरी शिलाओं से जटित, विविध रङ्गी चट्टानों से अनेक रङ्ग रंजित गलीचे के तुल्य सुहावनी लगती है।

चन्द्रवर्णः—हाँ मुझे भी बहुत अच्छी लगती है।

राजाः—(देरतक विचार कर आनन्द पूर्वक अपने मनमें) अनेक मणियों की कान्ति से देदीप्यमान, शुकसारिका कोकिलादि पक्षी गणों से गुञ्जित, अनेक कृत्रिम शोभाओं से सुन्दर, एवं पुष्प-विमण्डित वाटिका, तथा कमलालङ्कृत सरोवरों से मनोहर, सङ्गमरमर के बने हुए राज महल या बंगले भले ही हों, किन्तु वे इस पर्वतराज की सुन्दर स्थली की शोभा के पसङ्गे के बरा- बर भी नहीं है ॥ १९ ॥

चन्द्रवर्णः—देव ! नूनं मह्यमपि रोचन्तेतराम् ।
राजा—(अनाकर्ण्य) अहो; सहस्रशो निरीक्ष्यमाणोऽपि नायं नयनयोरकौतुकं जनयति । किन्तु अस्य रमणीयताया रूपं प्रतिक्षणं नवं नवमिव प्रतिभाति मे ।
चन्द्रवर्णः—(स्वगतम्) देवः खल्वयं नितरां प्रकृतिसौन्दर्यविमोहितस्तिष्ठति, तदेनमन्यतः प्रेरयामि । (प्रकाशम्) देव ! इतोऽवलोकयतु परमरामणीयकमरण्यस्य—

यत्रैकतो लसति निम्बतमालताली-
जम्बीरजम्बुसहकारसुदाडिमाली ।
अन्यत्र चन्दनकदम्बकदम्बकं तत्
कूजन्ति यत्र विपुला विविधा विहङ्गाः ॥ २० ॥

अपिच ।

क्वचिदलिनिकुरम्बा मञ्जु गुञ्जन्ति तत्र
विदलति कपिवृन्दं दाडिमानां फलानि ।
कलरवमनिशं ताः सारिकाः कुर्वतेऽत्र
फलभरनमितास्ता भान्ति शाखास्तरूणाम् ॥ २१ ॥

चन्द्रवर्णः—महाराज ! सचमुच मुझे भी ऐसाही लगता है ।
राजाः—(अनसुनी जैसा कर के) अहा ! हजारों बार देखने पर भी, आँखें तृप्त नहीं होतीं, इस की सुन्दरता तो क्षण क्षण में नए नए रूप धारण करती जाती है ।
चन्द्रवर्णः—(मनमें) महाराज तो सचमुच प्राकृतिक सौंदर्य्य से मोहित हो गए हैं, तो इनके ध्यान को किसी दूसरी ओर लगाऊँ (प्रकट) महाराज ! इधर जंगलकी अति मनोहर शोभा तो देखिए ।
एक ओर निम्ब, निम्बू, तमाल, ताड़, जामुन आम, और अनारोंकी वृक्षावलियाँ विराजती हैं, और दूसरी ओर चन्दन एवं कदम्बोंकी पंक्तियाँ हैं, जिनपर रङ्ग विरङ्गे पक्षी गण गा रहे हैं ॥ २० ॥ तथाः—
कहीं भ्रमरावली मधुर गूँज रही हैं, कहीं वानरगण अनारोंके फल फाड़ रहेहैं, कहीं सारिकायें किलकारती हैं, और कहीं कहीं फलोंसे भरी हुई सालायें, झुकी

इतश्च ।

आस्वाद्य रम्यकलिकां सहकारवृक्षे
गायन्ति कोकिलगणा मधुरस्वरेण ।
नारङ्गकाणि विलसन्ति मनोहराणि
रम्भादलानि रुचिराण्यपि तानि तानि ॥ २२ ॥

[राजा सहर्षं निरीक्षमाणः परिक्रामति]

चन्द्रवर्णः—देव ! पश्य—

इहालवालेषु तलेषु वीरुधां—
स्रवन्ति नित्यं मकरन्द-बिन्दवः ।
मुहुर्मुहुस्तत्र पतन्ति केसरा
यदासवार्थं भ्रमरा भ्रमन्त्यमी ॥ २३ ॥

किञ्च ।

पानान्मिलिन्दनिवहेन मरन्दराशे—
र्यन्मन्दिरं भवति सुन्दरमिन्दिरायाः ।
तत्पङ्कजं धृतसहस्रदलं तडागे
विश्रान्तयत्यपि रवेः किरणान् सहस्रम् ॥ २४ ॥

हुई शोभित हो रही हैं। और इधरः—आमके वृक्षोंपर सुन्दर मञ्जरियोंका आस्वादन करके कोकिलाएँ मधुर स्वरसे पञ्चम अलाप रही हैं, कहीं मनोहर सन्तरोंकी कतार और कहीं केलोंके झुण्ड शोभित हो रहे हैं ॥ २१–२२ ॥

(राजा हर्षसे देखता हुआ घूमता है)

चन्द्रवर्णः—महाराज, देखिए!

इधर लताओंकी क्यारियोंमें सुगन्धित पुष्परस तथा पुष्पपराग बार बार गिर रहा है, जिसका रस लेनेके लिए भ्रमरगण इधर उधर घूम रहे हैं ॥ २३ ॥

और इस तालव मेंः—

भ्रमरों को अपने रस का पान कराने वाला, लक्ष्मी का सुन्दर भवन रूप यह सहस्र पँखडियों वाला कमल सूर्य्य की सहस्र किरणों को भी शीतलता प्रदान कर रहा है ॥ २४ ॥

राजा—सखे ! चन्द्रवर्ण ! कृतमिदानीं काननालोकनकौतुकेन ।
तदेहि, अस्य सरस्तटरुहः सहकारस्य तले किञ्चिदुपविशावः ।

चन्द्रवर्णः—यथा रोचते देवाय ।

[इति–उभौ–अपि–उपवेशनं नाटयतः]

चन्द्रवर्णः—(पुरो विलोक्य–सहर्षम्) राजानं प्रति । देव ! पश्य-
तु पुरस्तादिदम्—

मदमतङ्गजकुञ्जरमण्डितं
बहुसुरङ्गकुरङ्गनिनादितम् ।
विविधगुल्मलतावलिवेष्टितं
हरित-शाद्वल-जाल-पटायितम् ॥ २५ ॥

तिलकचम्पकराजिविराजितं
बकुलचन्दनगन्धसुगन्धितम् ।
अनिललोलदलत्कदलीदलं
चलदनेकवलीमुखसंकुलम् ॥ २६ ॥

राजाः—मित्र चन्द्रवर्ण, अरण्य शोभा निरीक्षणके कौतूहलको अब बन्द करो,
आओ अब जरा इस सरोवर तीरवर्ती आमके नीचे बैठें ।

चन्द्रवर्णः—जैसी महाराजकी इच्छा (दोनों बैठते हैं)

चन्द्रवर्णः—(सामने देखकर राजाके प्रति) महाराज ! सामने इस तालावको
देखिए ।

कहीं इस तालवका किनारा मस्त हाथियोंके झुण्डसे मण्डित है, कहीं रङ्ग
बिरङ्गी हरिणियों से निनादित है, कहीं अनेक प्रकार की लताओं से वेष्टित है ।
कहीं हरी हरी घासों से बिछे हुए हरे गलीचे की तरह मालूम हो रहा है,
कहीं कहीं तिलक, चंपा, मौलसरी, चन्दनादि वृक्षावली की सुगन्धि से युक्त

लसति सारससन्ततिशोभितं
सरससारससारसरोवरम् ।
इह विहङ्गविहङ्गवराकुलं
यदमलैः कमलैः कमलङ्कृतम् ॥ २७ ॥

पतदमन्दमरन्दकरम्बितं
जलजकेसररागपिशङ्गितम् ।
लुलितनक्रकदम्बतरङ्गितं
ललितवल्लरिमञ्जरिरञ्जितम् ॥ २८ ॥

तदरविन्दमिलिन्दकृतेन्दिरा—
सुभगमन्दिरवृन्दविडम्बनम् ।
तटपलाशिसुलास्यकलापिभिः
कृतमृदङ्गनिनादविडम्बनम् ॥ २९ ॥

न्धित है, और कहीं हवा के झोंकोंसे हिलते हुए केलोंके पत्ते शोभा सरसा रहे हैं, एवं कहीं वानरोंकी मण्डलियाँ किलकार कर रही हैं ।

और महाराज इस सरोवरका पानीः—

कहीं सारस समूह सुशोभित है, कहीं सरस-सरोजोंसे सलोना है, कहीं बतख राजहंस, कारण्डवादि पक्षियोंसे व्याप्त है, कहीं कमलों के अधिक गिरते हुए रस तथा पराग से, और कहीं सुन्दर वेलों की मञ्जरियों से लाल होगया है, और कहीं मानों इस जल कमलको भ्रमरोंने लक्ष्मी के मन्दिर की नकल कर के अपना सुन्दर सदन बना लिया है, तथा इसी के किनारे के वृक्षों पर सुन्दर नृत्य करने वाले मोरोंने मानों मृदङ्गनाद का अनुकरण करना शुरु कर दिया है । श्लोक २५–२९ तक ।

राजा—सखे !

प्रकृतिजनितां निर्वर्ण्यैतां गिरीन्द्रसुचारुतां
व्रजति सहसा सत्त्वाद् भिन्नं गुणद्वयमन्यतः ।
श्रयति हृदयं सत्यं सत्त्वं गुणं लघु पश्यतां
भवति च परं चेतो मग्नं मुदम्बुधिवीचिषु ॥ ३० ॥

चन्द्रवर्णः—(आदित्यमण्डलं निर्वर्ण्य) देव ! वियदङ्गनमध्यवेदिकामध्यारोहति भगवानम्बरमणिः । तदागम्यताम्, परमपावनां तपोवन-भूमिं प्रविशावः ।

राजा—कियति दूरे तपोवनभूमिर्विद्यते ।

चन्द्रवर्णः—इयमभ्यर्णतमा सरोवरमुत्तरेण

[इति द्वावपि तपोवनाभिमुखं परिक्रामतः]

राजा—(तपोवनं विलोक्य—सहर्षम्) अहह तदिदम् ।

तपस्विवरमण्डितं सुपवनं वनं पावनं
यदेत्य गिरिजा गजा मृगगणास्सुपञ्चाननाः ।

राजाः—मित्र !

इस गिरिराज की नैसर्गिक मनोहरता को देख कर एक दम रजो एवं तमो गुण नष्ट हो जाते हैं, सचमुच सूक्ष्मता पूर्वक निरीक्षण करने वालोंका हृदय सत्वगुण से ओत प्रोत हो जाता है । और चित्त केवल आनन्द सागर में निमग्न हो जाता है ॥ ३० ॥

चन्द्रवर्णः—(सूर्य्य मण्डल को देखकर) महाराज ! सूर्य्य गगनाङ्गन के ठीक बीच आगया है, तो आइए पवित्र तपोवन में चलें ।

राजाः—कितनी दूर तपोवन है ?

चन्द्रवर्णः—यह समीपही तालव की उत्तर की ओर ।

(दोनों तपोवन की ओर जाते हैं)

राजाः—(तपोवनको देख कर आनन्दसे)

अहा ! वही तपस्वी गणोंसे मण्डित, पवित्र वायु युक्त यह तपोवन है, जहाँ आकर जंगली हाथी, सिंह और मृग गण स्वाभाविक शत्रुता छोड़कर परस्पर

वसन्ति रिपुतां विहाय सुहृदो यथा ते मिथः
सदा वितनुते सुमङ्गलमहो सतां सङ्गमः ॥ ३१ ॥

यत्र च ।

संसारसागरमिमं नु तितीर्षवः किं
विश्वेश्वरस्य परमं पदमीप्सवो वा ।
देव्या निसर्गरुचिरप्रकृतेः सुतत्त्वं
जिज्ञासवोऽथ नितरामयि! मानवाः किम् ॥३२॥

दुखाम्बुधेर्लहरिकात्रुडितान्तराक्षाः
किं वा समस्तविषयाद् विनिवृत्तचित्ताः ।
सौन्दर्यमीक्षितुमिदं प्रकृतेर्नु वाञ्छा
प्रश्नेन वालमिह यद् भवतां चिकीर्षा ॥ ३३ ॥

आगच्छताऽऽगच्छत पश्यताऽऽध्व-
मानन्दत ध्यायत वामुमीशम् ।
तपोवनोर्वीरुहनीडभाजः
कीराङ्गना इत्थमिवागिरन्ति ॥ ३४ ॥

मित्रतापूर्वक रहते हैं, ठीक है सत्पुरुषोंकी सङ्गति सदा मंगल-कारिणी ही होती है ॥ ३१ ॥

और:—जहाँ शुक सारिकायें कह रही हैं कि हे भवताप तप्त मानव समाज! क्या आप संसार सागर तरना चाहते हैं? क्या आप परमेश्वरके परम पदाभिलाषी हैं? अथवा आप स्वभाव सुन्दरी प्रकृति देवीका तत्त्वालोचन करना चाहते हैं? अथवा पूछने की क्या जरुरत है:—

यदि आप दुःख पारावार निमग्न हैं, आप सांसारिक विषय वासनाओंसे उपरत हो चुके हैं, अथवा आप की इच्छा प्राकृतिक सौंदर्य्य देखने की है, तो आइए आइए बैठिए, देखिए आनन्द कीजिए, अथवा परमात्म प्राप्तिके लिए समाधि लगाइए ॥ ३२–३४ ॥

[क्षणं विभाव्य—चन्द्रवर्णं प्रति–सोल्लासम्] सखे !

जरसा दुर्वहां निजराज्यधुरं सकलराज्य–धूर्वह–धुरन्धरे विधिवदवसितब्रह्मचर्य्याश्रमे कृताखिलशास्त्रपरिश्रमे प्रजापालनानुरंजनचतुरे क्षात्रधर्मनदीष्णे विनयोज्वले आत्मतनये चन्द्रकेतौ समारोप्य सम्प्रति वयं क्षत्रिय–कुलोचितेन विधिना अस्मिन्नेव तपोवने शेषं वयः सुखेन गमयितुमभिलषामः ।

चन्द्रवर्णः—देव ! समुचित एवेदानीं कुलोचितधर्माचारवेदिनो भवतः तृतीयाश्रमपरिग्रहः ।

राजा—सखे । तदितो गत्वा क्रमादेतदनुष्ठातव्यम् ।

चन्द्रवर्णः—देव ! साधु हृदयमीदृशं भवताम् ।

राजा—(पुरोऽवलोक्य) सखे चन्द्रवर्ण ! कोऽयं त्वरया द्वाभ्यां सह इत आगच्छति ।

(क्षण भर विचार करके आनन्द पूर्वक चन्द्रवर्णसे)

मित्र, अब हम वृद्धावस्था में अपने दुर्वह राज्यभार को, संपूर्ण राज काज चलाने में धुरंधर, विधिपूर्वक ब्रह्मचर्य्याश्रम को समाप्त करने वाले, संपूर्ण शास्त्रों में पारंगत, प्रजा के पालन तथा अनुरञ्जन में चतुर, क्षात्र धर्म में प्रवीण, विनय के कारण पवित्र अपने पुत्र चन्द्रकेतु को सौंप कर क्षत्रिय कुलोचित कर्तव्यसे इसी तपोवन में शेष जीवन सुख पूर्वक बिताना चाहते हैं।

चन्द्रवर्णः—महाराज ! कुलोचित धर्माचार के जानने वाले आप के लिए अब वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करना ठीकही है ।

राजाः—मित्र, तो यहाँ से जाकर क्रमशः यह करना होगा (अर्थात् पुत्रका राज्याभिषेक आदि)

चन्द्रवर्णः—महाराज ! यह तो आपका उत्तम विचार है ।

राजाः—(सामने देखकर) मित्र चन्द्रवर्ण ? यह कौन दो जनों के साथ जल्दीसे इधर आ रहा है ।

चन्द्रवर्णः—देव ! अयमस्य तपोवनस्याधिष्ठाता भगवान् मुनीन्द्रः।

राजा—सखे ! मम पुरोगामी भव ।

चन्द्रवर्णः—देव ! आगम्यताम् । (इति परिक्रामतः)

[ततः प्रविशति तापसाभ्यामनुगम्यमानो मुनीन्द्रः]

मुनीन्द्रः—(विष्वक् चक्षुषी प्रसार्य–साद्भुतम्)

नानाविपक्वनवधान्यविचित्रितान्तां
कुर्वन् धरां तुहिनयन् सरितां जलानि ।
नीहारपुञ्जमलिनाम्बरवेषधारी
हेमन्त एष पुरतः प्रतिहारकः किम् ॥ ३५ ॥

कुतः ।

जातोऽम्बरेऽम्बरमणी रजनीन्द्रतुल्यो
वारीणि सान्द्रहिमजालशिलातलानि ।
प्राणोऽपि जीवहरणः पवनोन्वयं य—
न्मायाप्रपञ्चनवनाटकसूत्रधारः ॥ ३६ ॥

चन्द्रवर्णः—महाराज ! यह हैं इस तपोवन के अधिष्ठाता भगवान् मुनीन्द्र ।

राजाः—मित्र, मेरे आगे चलो ।

चन्द्रवर्णः—महाराज, आइए (ऐसा कह कर घूमता है)

(तब इसके बाद दो तपस्वियों के साथ भगवान् मुनीन्द्र आते हैं)

मुनीन्द्रः—(चारों ओर आँखें फैलाकर आश्चर्य्य से) अनेक प्रकार के पके हुए नए नए धान्यों से विचित्र एवं सुन्दर पृथ्वी को बनाता हुआ, नदियों के पानी को बर्फ बनाता हुआ, कुहासे के पुञ्जसे मलिन आकाश रूपी वस्त्र धारण करनेवाला मानों ऐंद्रजालिक के समान हेमन्त ऋतु खड़ा है । क्योंकि:—॥ ३५ ॥

आकाशमें सूर्य्य चन्द्रतुल्य बन गया है, जल कठिन हिम तुल्य बन गया है, और प्राण तुल्य वायुभी जीव हरण करने वाला हो गया है, निश्चयही यह हेमन्त माया प्रपञ्च (प्रकृति की विविध कृतियाँ) रूप नाटक का सूत्र धार है ॥३६॥

किंच ।

अम्भोजिनीह मिहिकाहतदेहदीना
जाता भुजङ्गमगणा मदवारिहीनाः ।
प्रालेयशीतलजले विकला हि मीना
वह्न्येकमात्रशरणा बत दीनदीनाः ॥ ३७ ॥

अग्निवर्णः—(सकरुणम्) भगवन्! पश्य पश्य

तुषारजालान्तरितोग्रभासं
भास्वन्तमेतं परिकल्प्य चन्द्रम् ।
सा पद्मिनीयं विरहेण धत्ते
नालावशेषां ध्रुवमङ्गयष्टिम् ॥ ३८ ॥

अग्निमुखः—(सस्मितम्) भगवन्!

कलितमधुरगीतिर्दन्ततन्त्री जनाना—
मविरतहिमपीडाबद्धकम्पाङ्गकानाम् ।
दहनतपनवर्जं नास्ति कोप्याश्रयो व—
स्तदिति भजत तौ सा संब्रवीति प्रभाते ॥ ३९ ॥

और:—इस ऋतु में हिम पात के कारण बिचारी कमलिनी देह से जर्जरित हो गयी है, सर्प समूह विषहीन हो गया है, अत्यन्त ठण्डे जल के कारण मछलियाँ व्याकुल दिखाई देती हैं, और खेद है कि बिचारे गरीबों के लिए अग्नि ही एक मात्र शरण है ॥ ३७ ॥

अग्निवर्णः—(दयासहित) भगवन्! देखिए:—
हिम कणों के जाल में छिपे हुए उग्र किरणों वाले सूर्य्य को चन्द्रमा जान कर, सच मुच यह कमलिनी वियोग के कारण केवल दण्डतुल्य शरीर धारण कर रही है ॥ ३८ ॥

अग्निमुखः—(मुस्करा कर) गुरुदेव! निरन्तर शीतबाधा से कम्पित शरीर वाले लोगों की मधुर नाद वाली दन्तावली रूपी वीणा प्रातःकाल में मानों यह कहती है कि हे मनुष्यो! अग्नि और सूर्य्य के अतिरिक्त तुम्हारा कोई शरण देने वाला नहीं है, इस लिए उन्हीं का आश्रय लो ॥ ३९ ॥

मुनीन्द्रः—(विमृश्य)

हिमवर्षविशेषशीतला
मृदुला अप्यमृदुप्रपातिनः ।
रुचिरा अपि चन्द्रभानवो
न रुचिं ते जनयन्ति साम्प्रतम् ॥ ४० ॥

अपि च ।

सुतुषारतुषारवर्षुका
रजनीवल्लभमण्डिता निशाः ।
सुखदा अपि सौख्यदा न ता
निखिलप्राणिजनाय ह्यधुना ॥ ४१ ॥

[अग्रतो विलोक्य—सस्मितम्]

पतदच्छतुषार—विप्रुषां
कुलकैर्मौक्तिकजालकैरिव ।
विहितं गजमस्तकं ध्रुवं
हिमकालेन विभूषितं सता ॥ ४२ ॥

मुनीन्द्रः—(विचार कर)
हिम वर्षण से विशेष शीतल, कोमल होती हुई चुभने वाली, रुचिकर भी ये चन्द्र किरणें अब अच्छी नहीं लगती हैं ॥ ४० ॥
और:—देखो तो:—
हिम कण बरसानेवाली, चन्द्रमण्डित वही सुखदायिनी रात्रियाँ, अब प्राणियों को सुखदायिनी नहीं लगती है ॥ ४१ ॥

(आगे देख कर और मुस्करा कर)

मानों हेमन्त ऋतु नें मोती की माला की तरह गिरती हुई निर्मल हिम-कण माला से गजराज का मस्तक मण्डित कर दिया है ॥ ४२ ॥

अग्निवर्णः—भगवन् ! पश्य—अमी—

विहगा जलचारिणो जलं
न विगाहन्त इदं सुकेलयः ।
न विशन्ति वरूथिनीं यथा
समराकौशलधारिणो नरः ॥ ४३ ॥

अपि च !

कान्तारे मृदुशाद्वलाञ्चिततले कान्ताः कुरङ्गाङ्गनाः
प्रालेयाकुलिताङ्गकैः स्वपृथुकैः सुस्तन्यसंपायिभिः ।
संसेव्यातपमङ्गपीडनहरं मध्याह्नकालेऽप्यहो
ता अत्यन्तबुभुक्षिता अपि सुखं नात्तुं क्षमन्ते तृणम् ॥४४॥

मुनीन्द्रः—(विलोक्य—सानुरागम्) वत्स अग्निवर्ण ! पश्य

सारङ्गडिम्भो हिमपीडिताङ्गः
स्तन्यं जनन्या इह पातुकामः ।
दृढं मिथस्सम्पुटिताच्छदन्तं
व्यादातुमास्यं प्रभुरेव नासौ ॥ ४५ ॥

अग्निवर्णः—भगवन् ! देखिएः—

जैसे युद्ध कला-अनभिज्ञ मनुष्य सेनामें प्रवेश नहीं करते हैं, वैसे ही ये जल विहारी विहङ्ग गण जल में अवगाहन नहीं करते हैं ॥ ४३ ॥

औरः—

कोमल हरी घसोंसे अलङ्कृत जंगल में, मनोहर हरिणियाँ, जाड़े से जकड़े हुए अङ्गोंवाले अपने दुधमुँहे बच्चोंके साथ, शरीर की पीड़ा को दूर करने वाली धूप का सेवन कर, दोपहर में भी वे क्षुधातुर होने पर सुख पूर्वक घास नहीं खा सकतीं ॥ ४४ ॥

मुनीन्द्रः—(अनुराग सहित देखकर)

प्यारे अग्निवर्ण ! देखोः—

जाड़े से पीड़ित हरिणी का यह बच्चा, माता का दूध पीने को चाहता हुआ भी दृढ़ता से जुड़े हुए दाँत वाले मुख को खोल नहीं सकता ॥ ४५ ॥

अग्निवर्णः—(विहस्य) भगवन्! इह विलोकयतु भवान्—

मध्यन्दिनेऽपि तृषितास्सरितस्तटस्था-
स्स्तम्बेरमा लहरिकासलिलं सखेलम्।
शीतं स्पृशन्ति हि करेण पुनर्ग्रहीतुं
नालं कथञ्चिदपि ते प्रभवो न पातुम्॥ ४६॥

मुनीन्द्रः—(उपरि विलोक्य—ससम्भ्रमम्) अये! तरणिबिम्बमिदमन्तरिक्षमध्यकक्षामवगाहते! तन्माध्यन्दिनीं सवनक्रियां कर्तुं सत्त्वरं गच्छामः। [इति परिक्रम्य गच्छन्ति]

चन्द्रवर्णः—(उपगम्य) भगवन्! चन्द्रवंशतिलकः प्रणमति।

मुनीन्द्रः—(सरभसम्) स्वस्ति चन्द्रकुलनृपमुकुटमणये महाराजाय (नेपथ्याभिमुखः) कः कोऽत्र भोः। पाद्यं पाद्यम्, अर्घोऽर्घः, अये बटो! विष्टरम्, विष्टरम् सोमवंशावतंसाय महामहिमशालिने महीभुजे।

[प्रविश्य बटुः कुशासनं समर्पयति—राजा प्रणम्योपविशति]

अग्निवर्णः—(हँस कर) गुरुदेव आप इधर तो देखिए! दोपहर में भी नदी के किनारे खड़े हुए प्यासे हाथी, तरङ्गित शीतल जल को खेलते हुए से छूते हैं, किन्तु सूण्ड से उसे ग्रहण नहीं कर सकते। पीने की तो फिर बात ही क्या? ॥ ४६॥

मुनीन्द्रः—(ऊपरकी ओर देख कर) जल्दी से।
सूर्य्य महाराज तो ठीक आकाश के बीच विराजमान हैं, तो मध्यकालीन यज्ञ-क्रिया संपादनार्थ जल्दी चलो। (घूम कर जाते हैं)

चन्द्रवर्णः—(पास आकर) मुनिवर! चन्द्रवंश का तिलक आपको प्रणाम करता है।

मुनीन्द्रः—(उत्सुकता से) चन्द्रकुल के मुकुटमणि महाराज चन्द्रमौलि का कल्याण हो। (नेपथ्य की ओर देख कर) क्या कोई यहाँ है? पाद्य और अर्घ्य जल्दी लाओ, हे ब्रह्मचारिन्! चन्द्रवंशावतंस महामहिमाशाली महाराज के लिए आसन लाओ। (ब्रह्मचारी आकर कुशासन बिछा देता है)
(राजा प्रणाम कर के बैठ जाता है)

मुनीन्द्रः—राजर्षे !

त्वामासाद्य प्रकृतिसुभगं चन्द्रमौले ! क्षितीन्द्रं
कच्चित्प्रीतं प्रकृतिवलयं वर्त्तते सानुरागम् ।
कच्चिद्दैवी व्यसनपदवी राज्यमन्तश्चरिष्णु-
र्जिष्णो ! कीर्तिः प्रसरति नवा खल्वबाधं दिगन्ते ४७

राजा—भवादृशां जगन्मङ्गलवितीर्णैकदृशां दुरितशमनजागरूकाणां ज्ञानचक्षुषां तपस्विनां प्रसादे समासादिते सति किममङ्गलं नः । (पुनः सविनयम्) भगवन् !

कच्चित्तपो वस्तपतां वराणां
निर्विघ्नवर्द्धिष्णु दिनक्रमेण ।
कच्चित्क्रतूनां फलमन्तरायो
न बाधते कश्चिदनार्यजन्यः ॥ ४८ ॥

अपिच ।

कच्चिद् द्रुमाणां मुनिकन्यकाभिः
संवर्द्धितानां सुभगा समृद्धिः ।

मुनीन्द्रः—राजर्षे ! स्वभाव से हीं प्रिय आप जैसे राजा को पा करके, प्रजामण्डल अनुरक्त एवं प्रसन्न तो है ? हे विजयशील चन्द्रमौलि ! और आप के राज्य में कोई दैवी विपत्ति का प्रकोप तो नहीं ? कहिए सर्वत्र आप की कीर्त्ति निर्विघ्न फैल रही है न ? ॥ ४७ ॥

राजाः—जगत् कल्याण में तत्पर, पापनिवारण में संलग्न, आप जैसे ब्रह्मज्ञानी तपस्वियों के कृपापात्र होने पर हमारा क्या अमंगल हो सकता है ? (फिर विनयपूर्वक) मुनिवर !

तपस्वियों में श्रेष्ठ आप का तप प्रति दिन निर्विघ्नता से बढ़ता है न ? कोई राक्षसीय विघ्न आप के यज्ञ फल को बाधा तो नहीं पहुँचाता ? ॥ ४८ ॥

औरः—

मुनि कन्याओं से पाले पोसे हुए वृक्षों की अच्छी समृद्धि तो है न ? मुनि

क्वचित्कुरङ्गीपृथुकाः स्वहस्त—

न्यस्तांकुरग्राससुपुष्टदेहाः ॥ ४९ ॥

मुनीन्द्रः—राजर्षे ! क्षत्रियकुलकमलदिवाकरे निखिलजनदुःखतिमिरनिशाकरे तत्रभवति भवति शासितरि चतुरर्णवमेखलामखिलामिलां शासति सति किं नामासमञ्जसमाश्रमाणां नः ।

(प्रविश्य)

बटुः—भगवन् ? मध्याह्नवेलेयमतिवर्तते ।

तदागम्यताम् , माध्यन्दिनीं क्रियां निर्वर्तयितुम् ।

मुनीन्द्रः—महाराज ! मध्याह्नसवनक्रियासमयोऽयमस्माकम् ।

राजा—तर्हि वयम्—

पुण्यं तपोवनमनेकतपस्विरम्यं

काम्यं तपोधनजनैकपदोपभोग्यम् ।

योग्यं सुसंयमभृतामवलोकमाना

यामोऽतिमोदमनसा सदनं स्वकीयम् ॥ ५० ॥

कन्याओं के अत्यन्त प्यारे हरिणों के बच्चे तो स्वस्थ हैं न ? ॥ ४९ ॥

मुनीन्द्रः—नृपवर ! क्षत्रियकुल रूपी कमल के सूर्य तथा सकल जन के दुःखरूपी अंधकार के चन्द्र आप जैसे राजा के चार समुद्र रूपी मेखलावाली वसुन्धरा के शासक होने पर, हमारे आश्रमों की क्या हानि हो सकती है ?

(प्रवेश कर)

ब्रह्मचारीः—गुरुदेव ! दोपहर का समय व्यतीत हो रहा है, तो मध्याह्नकालीन क्रिया सम्पादन के लिए चलिए ।

मुनीन्द्रः—महाराज ! यह हमारा मध्य कालीन क्रिया संपादन का समय है ।

राजा—तो हमः—

अनेक तपस्वियों से रमणीय, सर्वस्व त्यागी तपोधनों के लिए एक मात्र भोग्य, यतिवरों के लिए योग्य, सुन्दर एवं प्रिय तपोवन को प्रसन्न मन से देखते हुए अपने घर को लौटते हैं ॥ ५० ॥

मुनीन्द्रः—यथा रोचते महाराजाय। वयमपि माध्यन्दिनीं सवनक्रियामनुष्ठातुं प्रविशामहे।

[इति निष्क्रान्ताः सर्वे]

[इति प्रथमोऽङ्कः]

मुनीन्द्रः—जैसी महाराज की इच्छा। हम लोग भी मध्याह्नीय क्रिया संपादन के लिए जाते हैं।

(सब निकल जाते हैं)

प्रथमाङ्क समाप्त.

द्वितीयोऽङ्कः ।

[ततः प्रविशति पीताम्वरधरो ब्रह्मचारी विनयकुमारः]

विनयकुमारः—अये, विभातप्राया विभावरी । तथाहि

आक्रंस्यमानममुमम्बरराजहंसं
प्रागम्बरेऽरुणकरैरपि रञ्जयन्तम् ।
उत्प्रेक्ष्य मन्दकिरणश्चरमाद्रिशृङ्गं
तुङ्गं श्रयत्यमृतदीधितिरेष नूनम् ॥ १ ॥

अपिच ।

दक्षात्मजा दयितमस्तमितं समीक्ष्य
निष्कान्तयो वितरलाः संकलाः सुताराः ।
प्राचीनशैलशिखरात्तमनूत्पतन्त्य—
स्ता दर्शयन्ति नियतं दयितानुरागम् ॥ २ ॥

द्वितीय अंक ।

(पीताम्बरधारी ब्रह्मचारी विनयकुमार का प्रवेश)

विनयकुमारः—अहा ! रात्रि प्रायः समाप्त हो चुकी है । क्योंकिः—पूर्व आकाश में लाल किरणों से प्राची दिशा को रञ्जित करते हुए, उदय होने वाले इस सूर्य्य देवको देखकर, मानों निस्तेज होकर, यह अमृत किरणोंवाला चन्द्रमा, पश्चिम के उन्नत गिरि–शिखर का आश्रय ले रहा है ॥ १ ॥

औरः—दक्ष की कुल कन्याएँ (तारागण) अपने स्वामी चन्द्रको अस्ताचल की ओर जाते हुए देख कर निस्तेज एवं स्फुरण रहित होकर, पश्चिम पर्वत की चोटी पर से, उसके पीछे मानों अस्त होती हुईं, पति–प्रेम को प्रकट कर रही हैं ॥ २ ॥

[परितो विलोक्य-परिक्रम्य च सहर्षम्]

सवनकर्मनिवृत्तविनिर्मला
विहितपद्मदलासनयोगिनः ।
परमभक्तितयोषसि तेऽमलाः
क्वचिरता विरता भवबन्धनात् ॥ ३ ॥

किंच ।

रुचिरकन्दरिकन्दरमुग्रभं
हरिणराजकुलं द्रुतमागतम् ।
भवति पङ्कजमर्द्धविबोधितं
मुकुलिताद्धमिदं कुमुदं ततः ॥ ४ ॥

[प्राचीं दिशमवलोक्य —साद्भुतम्]

अरुणकिरणमाली शक्तिसौन्दर्यशाली
नरकुलसुखदायी पङ्कजानन्ददायी ।
उदयति दिवि भानुर्यातमेर्वद्रिसानु-
र्निबिडतिमिरहारी हिंस्रमोदापहारी ॥ ५ ॥

(चारों ओर देख कर और घूम कर हर्ष सहित)

उषा काल में स्नान-क्रिया से निवृत्त अतएव निर्मल होकर पद्मासन लगाए हुए वे योगी गण परम भक्ति के कारण शुद्धान्तःकरण होते हुए भव-बन्धन से छूटकर ब्रह्मानन्द में लीन होते हैं ॥ ३ ॥

औरः—भयंकर केसरी पर्वत की सुन्दर गुफाओं में जल्दी जल्दी आ रहे हैं, एक ओर कमल अध खिले दीख रहे हैं, और दूसरी ओर कुमुदिनी अर्ध मुकुलित हो रही हैं ॥ ४ ॥

(पूर्व दिशा देख कर आश्चर्य्य सहित)

आकाश में लाल किरणों को फैलाने वाला, गाढ़े अंधकार को दूर करने वाला, हिंसक जंतुओं के आनन्द को हरने वाला, मानव गण को आनन्द प्रदाता, एवं कमलों को विकसित करने वाला शक्ति सौंदर्य्यशाली सूर्य्य सुमेरू के शिखर पर उदित हो रहा है ॥ ५ ॥

(मार्तण्डमण्डलं निर्वर्ण्य)

अङ्गारकव्रजसमानसुलोहिताङ्गो
भास्वान् वितप्ततपनीयसरूपरूपः ।
आरूढवानुदयसानुमतस्स सानु-
माभूषयन् रविरयं हरितं मघोनः ॥ ६ ॥

अथच ।

उदयकन्दरिणः शिखरं गतं
तिमिरतस्कर एनमहस्करम् ।
सपदि वीक्ष्य शिलोच्चयकन्दरां
विशति सैष निगूहयितुं निजम् ॥ ७ ॥

[नाट्यालोकितकेन—पुनः सकौतुकम्]

युग्मम्—उदञ्चिते चण्डगभस्तिमालिनि
चकासदाकाशविकासशालिनि ।
पुरन्दराशारमणीयकुण्डले
प्रभासिते चाखिललोकमण्डले ॥ ८ ॥

(सूर्य्य मण्डल को देख कर)

अङ्गारों के समान अतिशय लाल बिम्बवाला, तपे हुए स्वर्ण के समान कान्ति वाला पूर्व दिशा को अलङ्कृत करता हुआ यह सूर्य्य उदयाचल के शिखर पर चढ़ गया है ॥ ६ ॥

तथाः—अन्धकार रूपी यह चोर उदयाचल के शिखर पर प्रभाकर को आए हुए देख कर, जल्दी से अपने को छुपाने के लिए गिरि–कन्दरा में घुस रहा है ॥ ७ ॥

(उत्कण्ठा सहित भाव पूर्वक देख कर)

चमकते हुए आकाश के विकास से सुशोभित, पूर्व दिशा के सुन्दर कुण्डल समान, संपूर्ण भुवन के प्रकाशक सूर्य्य के उदय होने पर, अखिल [illegible]

सर्वाणि पङ्कजदलानि विकस्वराणि
द्वन्द्वानि मोदभरितानि रथाङ्गनाम्नाम् ।
उद्यानराजय इमास्सहपुष्पहासा
वृन्दानि पक्षिमुखराणि महीरुहाणाम् ॥ ९ ॥

(सस्मितं पुनः)

सद्यस्सरांसि विकचैः कमलैः सुरम्यै-
रुन्निद्रपुष्पनिवहैर्वनमालिकेयम् ।
कूजद्विहङ्गमकुलैस्तरुपङ्क्तयस्ता
अर्चन्ति चाम्बरमणिं विविधप्रकारैः ॥ १० ॥

तदहमपि गुरुचरणानां क्रियमाणक्रतुक्रियारम्भाणामाश्रमाधिकारिणामाज्ञया समिदाहरणाय प्रस्थितोऽस्मि । तदेष त्वरयामि ।

[प्रविश्य सत्वरो बटुः]

बटुः—आर्य विनयकुमार ! अमन्दानन्दमयमद्य दिनं विद्यते ।

खिल गए हैं, चकवा और चकइयों की जोड़ियाँ आनन्द विभोर हो उठी हैं। ये उद्यान माला के पुष्प हँस रहे हैं एवं वृक्षों पर पक्षी गण चह चहा रहे हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥

(थोड़ासा मुस्करा कर)

सरोवर तत्काल विकसित सुन्दर कमलों से, वनमालायें खिले हुए पुष्पहारों से, और वृक्ष पंक्तियाँ पक्षियों के मधुर गान से, सूर्य्य नारायण की पूजा कर रहे हैं ॥ १० ॥

तो मैं भी आश्रमाधिकारी पूज्य गुरुदेव की आज्ञा से यज्ञ के लिए समिध आदि लाने के लिए जल्दी जाता हूँ।

(उतावले से प्रवेश कर)

ब्रह्मचारी:—भाई विनयकुमार ! आज बड़े ही आनन्द का दिन है।

विनय०—(साश्चर्यं परिवृत्य) सखे जगदिन्दो ! कथममन्दानन्द-मयं दिनमद्य विद्यते ?

जगदिन्दुः—आर्य ! अद्य वसन्तपंचमीमहोत्सववासरोऽस्ति ।

विनयकुमारः—ततः किम् ?

जगदिन्दुः—ततोऽद्य यज्ञादिपुण्यक्रियावसित्यनन्तरं क्वचित् कान-नान्तरे वसन्तावतारसम्पर्कजन्योत्कृष्टभागाया वसुन्धरायाः श्रियमनुभवितुं यथेष्टमादिष्टा वयं निखिलब्रह्मचारिणः ।

विनयकुमारः—अपि सत्यम् ? तदा तु महान् प्रमोदः ।

जगदिन्दुः—अथ किम् ।

विनयकुमारः—सखे जगदिन्दो ! तत्त्वं याहि, अहमप्येष समि-दाहरणं विधाय तवानुपदमेव समायातः ।

[इति—उभावपि निष्क्रान्तौ]

विनय कुमारः—(आश्चर्य्य से उसकी ओर देख कर) मित्र जगदिन्दु ! क्यों आज बड़े आनन्द का दिन है ?

जगदिन्दुः—भाई ! आज वसन्त पञ्चमी का महोत्सव है ।

विनय कु०—तो उस से क्या ?

जगदिन्दुः—तो आज यज्ञादि पुण्य क्रिया की समाप्ति के बाद किसी सुन्दर वन में ऋतुराज वसन्त के आगमन से सजी हुई वसुन्धरा (पृथ्वी) की शोभा को इच्छाऽनुकूल अवलोकन करने के लिए हम सब ब्रह्मचारियों को गुरुदेव ने आज्ञा दी है ।

विनय कु०ः—मित्र जगदिन्दु ! तो तू जा, मैं भी समिधाओं को लेकर यह तेरे पीछे ही आता हूँ ।

(दोनों जाते हैं)

[ततः प्रविशन्ति विपिनस्थल्यां विहरन्तो वसन्तश्रियमनु-
शीलयन्तः पीताम्वरधारिणो ब्रह्मचारिणः]

एकः—(समन्ततोऽवलोक्य–सहर्षस्मितम्)

नवकिसलयधारी शाखिसन्दोह एष
विकसितकुसुमाली राजते वल्लरीणाम् ।
अनुपमनवलक्ष्मीं नूनमेषा बिभर्ति
वनततिरिति हन्त स्वागतोऽयं वसन्तः ॥ ११ ॥

अपि च ।

ललितसुमितवल्लीवेल्लितानां तरूणां
भवति नवनवेयं सुन्दरी पल्लवश्रीः ।
अनुविपिनमृतूनामागतेऽत्रावतंसे
कलितललितलीलाकोकिलालापमुग्धे ॥ १२ ॥

(वन भूमि में घूमते हुए वसन्त शोभा–अवलोकन करते हुए
पीताम्वरधारी ब्रह्मचारी आते हैं)

एकः—(चारों ओर देख कर हर्ष और मुस्कान सहित)

वृक्ष समूहों ने नवीन पल्लवों को धारण कर लिया है, लताएँ विकसित कुसुमा-वलियों से विराज रही हैं, और वन पंक्तियाँ अनुपम नूतन कान्ति को धारण कर रहीं हैं, मानों हर्ष से ऋतुराज का स्वागत हो रहा है ॥ ११ ॥

और:—प्रत्येक वन में ललित–लीला को धारण करने वाली कोकिलाओं के आलापों से मुग्ध करने वाले, ऋतुओं में अलङ्कार रूप वसन्त के आगमन से, मधुर हँसती हुई लताओं से घिरे हुए वृक्षों के मनोहर–पल्लव की शोभा नई नई सी प्रतीत हो रही है ॥ १२ ॥

द्वितीयः—इह वसन्तभवा प्रसवावली
रुचिकरे सुवने सुवने घने ।
लसति विश्वत एव मनोरमा
सुमनसां मनसां वहुमोदिनी ॥ १३ ॥

किञ्च ।

जनमनांसि हरत्यतिमञ्जुलै—
रहह चारुतरं निजगुञ्जनैः ।
क्वचिदियं स्मरा भ्रमरावली
नवकदम्बकदम्बमुपागता ॥ १४ ॥

तृतीयः—भृतसुकोमलपल्लवसम्पदः
सुरसुगन्धसुगन्धितकाननाः ।
उपवने पवनेरितपल्लवा
बकुलभूमिरुहा विलसन्ति ते ॥ १५ ॥

अपिच ।

परिस्फुटन्मञ्जुलमञ्जरीणा—
माम्रद्रुमाणां विहसन्ति शाखाः ।

द्वितीयः—इस रुचिकर निर्मल जल वाले घने वन में, वसन्त कालीन मनोहर कुसुमावली देवताओं के मन को प्रसन्न करती हुई चहुँ ओर विराज रही है ॥ १३ ॥

तथाः—अहह ! कहीं यह भ्रमणशील मधुकर माला, (भ्रमर) नए कदम्ब के नव विकसित पुष्प समूहों पर जाकर, अति मञ्जुल गुञ्जन से लोगों के मन को कितना लुभारही है ॥ १४ ॥

तृतीयः—उपवन में अति कोमल किसलयों की सुन्दरता को धारण करने वाले, पवन से हिलते हुए पत्तों वाले, अपने फूलों की सुगन्ध से वन को सुगन्धित करते हुए ये मौलसरी के वृक्ष शोभा देरहे हैं ॥ १५ ॥

एवम्:—खिलते हुए सुन्दर मौरों वाले आम्र वृक्षों की डालियाँ मन्द हास्य कर

यासूपविश्याप्तरसाः स्वरेण
कलेन गायन्ति वनप्रियास्ताः ॥ १६ ॥

चतुर्थः—सम्यक् समीरणसमीरितपल्लवानि
रम्याणि सुन्दरतरूपवनानि भान्ति ।
यत्र प्रकाण्डविटपिस्थविहङ्गकाण्डा—
आमञ्जुगुञ्जनसुमञ्जुलमागिरन्ति ॥ १७ ॥

किञ्च ।

गुञ्जन्मिलिन्दनिकुरम्बलतानिकुञ्जे
गन्धं वहन् वहति गन्धवहो जपानाम् ।
आन्दोलयँश्च कदलीदलमण्डलानि
विन्दन्नमन्दमकरन्दमतीव मन्दम् ॥ १८ ॥

पञ्चमः—वसन्ते भातीयं विपिनतरुराजिः कुसुमिता
सुपुष्पा रम्येह व्रततिततिरेषा मधुयुता ।
वमन्ती माञ्जुल्यं बहलसहकारावनिरुहा—
महो मञ्जर्याली मधुररसपुष्टा विलसति ॥ १९ ॥

रही हैं, जिनके ऊपर बैठी हुई वन-प्रिया कोकिलाएँ मञ्जरी रस चख कर मीठी मीठी गा रही हैं ॥ १६ ॥

चौथाः—हवा से हिलते हुए सुन्दर पत्तों वाले वृक्षों के उपवन शोभा सरसा रहे हैं; जहाँ बडी बडी डालियों पर बैठे हुए पक्षीगण कलरव कर रहे हैं १७

तथाः—भ्रमर समूहों से गुञ्जित लता गृह को एवं केलों के पत्तों को हिलाता हुआ कमलों के रस तथा जल कणों को ग्रहण करता हुआ, और जपाकुसुमों के गन्ध को फैलाता हुआ वायु मन्द मन्द वह रहा है ॥ १८ ॥

पांचवाँः—अहा! इस वसन्त ऋतु में पुष्पमयी तरुपंक्ति तथा लतायें लह लहा रही हैं; आम्र वृक्षों की मीठे रस वाली मञ्जरियाँ मधुरिमा वमती हुई शोभा

अथच ।

तरङ्गिणीनीरतरङ्गशीतः
प्रनर्तयन् शाखिशिखाः समीरः ।
किञ्जल्कजालं प्रसवावलीनां—
वहन्सरत्येष हरन् क्लमं नः ॥ २० ॥

षष्ठः—पलाशिनां श्रेणिषु पल्लवानां
लतातनीनां कुसुमावलीषु ।
श्रियं निवेश्याद्य मनोऽभिरामां—
सर्वर्तुराजः परिशोभतेऽयम् ॥ २१ ॥

अपिच ।

नभः प्रसन्नं सलिलं प्रसन्नं
निशाः प्रसन्ना द्विजचन्द्ररम्याः ।
इयं वसन्ते वितता वसन्ती
प्रसादलक्ष्मीः प्रतिवस्तु भाति ॥ २२ ॥

दे रही हैं। और—नदीके जल तरंगों से शीतल, पुष्प परागवाही यह वायु तरु मस्तकों को नचाता हुआ हमारे खेदको हर रहा है ॥ १९ ॥ २० ॥

छट्ठाः—वृक्षों की पर्णमाला तथा वेलों के पुष्प गुच्छों में, नयनाभिराम लक्ष्मी को प्रतिष्ठित करता हुआ यह ऋतुराज आज विराज रहा है ॥ २१ ॥

औरः—आकाश भी प्रसन्न है, जल भी प्रसन्न है, एवं चन्द्र तथा तारा मण्डित रात्रियाँ भी आनन्द प्रफुल्ल हैं, इस प्रकार वसन्त में सब ओर छाई हुई प्रसन्नता रूपी लक्ष्मी देवी प्रत्येक वस्तु में भासित हो रही हैं ॥ २२ ॥

सप्तमः—विविधकाननभूरुहपङ्क्तयः
पवनवेगविकम्पितशेखराः ।
अवकिरन्ति वनेषु वसुन्धरां
स्वकुसुमैर्मृदुशाद्वलसुन्दराम् ॥ २३ ॥

किञ्च ।
रूपाणि रम्याणि वनस्थलीनां
प्रकुर्वतीनां कुसुमालिवर्षम् ।
प्रसूनभाजां जलदावलीनां
वातेरितानां जनयन्ति लीलाम् ॥ २४ ॥

अष्टमः—(विलोक्य-सस्मितम्)
आन्दोलितेयं मलयानिलेन
पृथङ् नु कर्तुं कृतनिश्चयेन ।
पुष्पाभिरामा सहकारवल्ली
दृढं समाश्लिष्यति वृक्षमेनम् ॥ २५ ॥

सातवाँ—वनों में वायु वेग से हिलते हुए शिखरों वाले विविध प्रकार के वृक्ष समूह अपने अपने फूलों को, कोमल घासों से हरी भरी सुन्दर पृथ्वी पर वरसा रहे हैं ॥ २३ ॥

फूलोंवाली अतएव पुष्पवृष्टि करने वाली वनस्थलियों के सुन्दर दृश्य वायु कम्पित मेघमालाओं की लीला को धारण कर रहे हैं ॥ २४ ॥

आठवाँ—(देख कर एवं मुस्करा कर)
वियुक्त करने के लिए तत्पर मलय पवन से हिलायी गयी, पुष्पों से सुन्दर आम्र वृक्ष की यह लता और भी अधिक प्रेम से लिपटती ही जाती है २५

तथा चैतानि—

वनप्रियाणां नु मदान्वितानां
निशम्य तं पञ्चमरागभङ्गम् ।
समन्ततः पादपमण्डलानि
नृत्यन्ति मन्दानिलदत्ततालम् ॥ २६ ॥

नवमः—(विहस्य)

परिभ्रमद्भृङ्गसुशब्दगीतयः
प्रफुल्लपुष्पद्विजराजिकान्तयः ।
चलन्मनोहारिसुपाणिपल्लवा
लसन्ति कान्ता विपिने लतालयः ॥ २७ ॥

अपिच ।

ऋतौ वसन्ते समुपस्थिते पुरो
वने वसन्तो निखिला हि जन्तवः ।
निजैर्निजैरुत्सवयोग्यवस्तुभिः
स्तुवन्ति हर्षन्ति नदन्ति भान्ति ते ॥ २८ ॥

और ये चारों ओर की वृक्ष पंक्तियाँ:—
मद मत्त कोकिलाओं के पञ्चम आलाप को सुनकर मन्द पवन से हिलना रूप ताल के साथ मानों नृत्य कर रही हैं ॥ २६ ॥

नवाँः—(हँस कर) मँडराते हुए भ्रमरों के मधुर गुञ्जन रूप गीतों वाली, खिले हुए पुष्प रूप दन्तपंक्ति की कान्ति वाली, तथा अभिनय करते हुए मनोहर हाथों के समान नए पत्तों वाली, ये लता रूप कान्तायें जंगल में विलास कर रही हैं ॥ २७ ॥

औरः—ऋतुराज वसन्त के आगमन पर, वनवासी अखिल प्राणी समूह, अपने अपने आनन्द योग्य वस्तुओं से अनेक नाद करते हुए दीख रहे हैं ॥२८॥

दशमः—(विमृश्य—समोदम्)

निरभ्रजाला विमलाम्बरा निशा
ग्रहावलीमण्डनमण्डिता इह ।
शशाङ्कबिम्बोद्भवचन्द्रिकासरा
वसन्तलक्ष्मीं द्विगुणां प्रकुर्वते ॥ २९ ॥

तथाहि प्रतिवासरम्

निरम्बुवाहाम्बररम्यगात्रा
विभावरी चारुमृगाङ्कवक्त्रा ।
नक्षत्ररत्नालिविशालिकण्ठा
विराजते कैरवशोभिनेत्रा ॥ ३० ॥

[नाट्येन परितो निभाल्य—सविस्मयम्]

रक्तैः पुष्पैः किंशुकोर्वीरुहाली
कृत्वाऽरण्यं शोणवर्णं समन्तात् ।
ज्वालामालासंकुलारण्यवह्नेः—
शोभां काञ्चित् संदधाना विभाति ॥ ३१ ॥

[इति सर्वे वसन्तोत्सवं नाटयन्त उपविशन्ति]

दशवाँ—(विचार कर आनन्द सहित)

इस ऋतु में मेघरहित निर्मल गगन रूप वस्त्रवाली, तारावली रूप हारावली से सुशोभित चन्द्र चन्द्रिका रूप श्वेत हार को पहनने वाली, रजनी देवी वसन्त-शोभा को द्विगुणित कर रही है ॥ २९ ॥

इसी प्रकार प्रतिदिन—

स्वच्छ अम्बर से सुन्दर शरीर वाली, मनोहर चन्द्ररूपी मुख वाली, नक्षत्र माला रूपी रत्नावलियों से सुशोभित कण्ठ वाली चन्द्र कमल रूपी नेत्रों वाली, यह रात्रि विराजती है ॥ ३० ॥

(अभिनय पूर्वक चारों ओर देख कर आश्चर्य्यसहित) पलाश श्रेणियाँ (ढाकों की पंक्तियाँ) लाल फूलोंसे संपूर्ण जंगल को लाल रंगवाला वनाकर, मानों ज्वालाओंसे घिरी हुई दावाग्नि की अवर्णनीय शोभा को धारण कर रही हैं ॥ ३१ ॥

(इस प्रकार सब ही वसन्तोत्सव मना कर बैठ जाते हैं)

एकः—सखे प्रियमित्र ! इदानीं किञ्चित् क्रीडनं विधेयम् ।
प्रियमित्रः—सखे देशमित्र ! साम्प्रतं कीदृक् क्रीडनं रुचिकरं समुचितञ्च प्रतीयते ।
देशमित्रः—(स्मृतिमभिनीय—सोल्लासम्) सखे !

अस्मिन् वसन्तसमये पिकपुञ्जमञ्जु—
संगीतपञ्चमरवाञ्चितगीतरम्ये ।
गङ्गातरङ्गकणसङ्गसुशीतवाते
किं रोचते न वद कन्दुकखेलनं ते ॥ ३२ ॥

प्रियमित्रः—सखे ! नूनं निपुणोऽसि विविधखेलनकलोचितकाल-कल्पनायाम्, तत् कथय क्व खेलनीयम् ।
देशमित्रः—(विचिन्त्य—सोल्लासम्) सखे ! सुरसरित्परिसरे कुत्र-चिद् रुचिरे विस्तीर्णे वनखण्डे खेलनीयम् ।
प्रियमित्रः—अयि कलितानेकखेलनकलाकौशल खेलारसिक ! खेलनानुकूलं तत् खलु जाह्नवीकूलान्तिकविपिनशकलम् । तदा-गम्यताम् मन्दाकिनीतटोपकण्ठम् ।

(इति सर्वे गङ्गातीराभिमुखं प्रचलन्ति)

उनमेंसे एक कुमारः—प्यारे प्रियमित्र ! अब जरा कुछ खेलना भी चाहिए ।
प्रियमित्रः—भाई देशमित्र ! इस समय कौन सा खेल अच्छा होगा ?
देशमित्रः—(स्मरण सा कर के आनन्द पूर्वक) मित्र ! कोकिल गण के मधुर पंचम स्वर युक्त गायन से सुन्दर गंगा तरङ्ग के जल कण से शीतल वायुवाले, इस वसन्त कालमें कहो, क्या तुम्हें गेंद खेलना अच्छा नहीं लगता? ॥३२॥
प्रियमित्रः—सचमुच तुम समयोचित अनेक क्रीडाकलामें निपुण हो, अच्छा तो बताओ कहाँ खेलाजाय ?
देशमित्रः—(विचार कर आनन्द पूर्वक) गंगा किनारे कहीं सुन्दर वन प्रदेशमें खेलना चाहिए ।
प्रियमित्रः—हे अनेक खेलों में चतुर ! सचमुच वह गंगा तट प्रदेश का वन-स्थल खेलने योग्य स्थान है । अच्छा तो आओ गंगा किनारे चलें ।

(सब गंगा की ओर जाते हैं)

प्रियमूर्तिः—(पुरोऽवलोक्य-सहर्षम्) सखायः ! या शैलराज-लालितललिताङ्गा स्वर्गसीमासोपानपरम्परेव मनोहरा मुनिमण्डलाखण्डलपदारविन्दपवित्रितपुलिना सर्वेषां चक्षुषी बहलानन्दामृतजुषी परविषयासङ्गमुषी कुर्वाणेत्र मनांस्याकर्षति, सेयम्—

प्रभाति नीलोत्पलदामसङ्ग—
प्रभातिरेकेण करम्बिताङ्गा ।
प्रेङ्खत्पतङ्गप्रसरप्रसङ्गा-
रिङ्गत्तरङ्गा सरिदङ्ग ! गङ्गा ॥ ३३ ॥

आनन्दमूर्तिः—(हर्षातिशयं नाटयन्) अयि वयस्याः ! सोऽयं सुरसरित्तटान्तिकस्थो वनखण्डः, तदारम्भणीयं गेन्दुकक्रीडनम् ।

(इति क्रीडाविधायिनः क्रीडनाय सज्जीभवन्ति—इतरे प्रेक्षका भूत्वा तृणमण्डितायां भूमावुपविशन्ति)

एकः—सखे हर्ष ! पश्य पश्य । पक्षद्वयविभक्ता अमी ब्रह्मचारिणः स्वस्वस्थानेषु बद्धपरिकरास्सन्नद्धाश्च तिष्ठन्ति ।

प्रियमूर्तिः—(आगे देखकर हर्ष सहित) मित्रो ! हिमालय से लालित सुन्दर शरीर वाली, स्वर्ग की सीढ़ी की तरह मनोहर, मुनिराजों के चरण–कमलों से पवित्र तट वाली सब की आँखों को अत्यन्त आनन्दामृत पिलाने वाली, एवं अन्य विषयों से हटाने वाली, जो सबके मनों को हरण करती है, वही यह:— नील कमल माला की प्रभासे विराजित, हिलते हुए पांखों वाले राजहंसो से शोभित चंचल तरङ्ग वाली गंगा वह रही है ॥ ३३ ॥

आनन्दमूर्तिः—(आनन्द को व्यक्त करता हुआ) हे मित्रो ! वही यह गंगा तटका प्रदेश है, तो यहाँ गेंद खेलना प्रारंभ कर दें ।

(खेलने वाले तैयार होते हैं और दूसरे दर्शक वनकर घास के फर्श पर बैठ जाते हैं)

उनमेंसे एकः—मित्र हर्ष ! देखो दो दलों में विभक्त ये ब्रह्मचारी गण अपने अपने स्थान पर खड़े हैं ।

हर्षः—(सस्मितम्) सखे दक्ष ! पश्य। देशमित्रे मध्यभागे कन्दुकं निधाय प्रताड्य च तमनुधाविते सति मध्य एव—आच्छिद्य प्रियमित्रस्तं गेन्दुकमनुधावन् कस्यचित् सम्मुखागतस्य चरणेनाहतोऽवाङ्मुखो निपतितः कन्दुकोपरि।

दक्षः—(चिरं विहस्य) सखे ! पश्य । उत्थाय प्रियमित्रः सत्वरं यावत् कन्दुकं ताडयति तावदेव द्वित्रैः समागत्य कन्दुकमाच्छिद्य क्रीडद्भिरन्योन्याहतचरणं भुवि निपतितं परस्परस्योपरि, इति सर्वे क्रीडितारो हसन्ति।

(नेपथ्ये)

अस्ताचलं जिगमिषुर्भगवान् दिनेशः
सिस्नासुरम्बुधितरङ्गसुभङ्गपंक्तौ।
उग्रं स्वरूपमपहाय नु रक्तवर्णः
शोणांशुकं परिविभर्ति स सप्तसप्तिः॥ ३४॥

हर्षः—(मुस्कराते हुए) भइया दक्ष ! देखो तो सही जब देशमित्र मैदान के बीच में गेंद रख कर और पादप्रहार कर पीछे दौड़ा तो बीचमेंही प्रियमित्र छीन कर उस गेंद के पीछे दौड़ते हुए सम्मुखागत किसी दूसरे खिलाड़ी के पैरों की ठोकरसे उस गेंद पर मुँहके बल गिर पड़ा।

दक्षः—(देर तक हँस कर) मित्र ! देखो प्रियमित्र उठ कर ज्योंही शीघ्रतासे ठोकर देता है, त्योंही दो तीन खिलाड़ी गेंद छीन कर खेलते हुए एक दूसरे से टकरा कर जमीन पर एक दूसरे पर गिर पड़े (सब खेलने वाले हँसते हैं)

पर्दे के अन्दरः—भगवान् सूर्य्य अस्ताचल पर जाते हुए, समुद्र की तरङ्गमाला में स्नान कर के अपने उग्ररूप को छोड़कर मानों लाल वस्त्र धारण कर रहे हैं॥ ३४॥

अपिच ।

शोणाम्बुवाहपटलाम्बरमावसाना
तिग्मांशुबिम्बमिव सा तिलकं दधाना ।
संराजते वरुणदिग्ललिताङ्गनेव
कांचिद् विचित्ररुचिरां रुचिमादधाना ॥ ३५ ॥

दक्षः—(सावधानमाकर्ण्य—सर्वान् प्रति) अये प्रियभ्रातरः ! प्रदोष-संध्यावेलेयमस्माकं संजाता, तदायान्तु सर्वे संध्यावन्दनादि-कृत्यसम्पादनाय । (इति सर्वे निष्क्रान्ताः)

(ततः प्रविशन्ति गुरुकुलाङ्गनभूमिकायां शतपदीं कुर्वाणा गीर्वाणवाणीप्रणयिनो ब्रह्मचारिणः)

एकः—(प्राचीं दिशामवलोक्य—सानन्दमानन्दमूर्तिं प्रति) सखे ! पश्य

अस्तं गतेऽम्बरमणौ दिवसावसाने
याते विहंगमकुले स्वकुलायमङ्ग ।
पान्थेषु मार्गमवसित्य गृहं गतेषु
चन्द्रो दिशं विलसयन्नुदितोऽयमैन्द्रीम् ॥ ३६ ॥

और:—यह पश्चिम दिशा रूपी ललिताङ्गना, बादलों की लाल साड़ी पहन कर, और ललाटपर लाल सूर्य्य रूपी सिन्दूर बिन्दु धारण करती हुई, किसी अनुपम शोभा से शोभित हो रही है ॥ ३५ ॥

दक्षः—(सावधानता पूर्वक सुन कर सब से) हे प्रिय बन्धुओ ! अब सायं-काल हो गया है तो हम सब सन्ध्यावन्दनादि के लिए चलें ।

(सब जाते हैं)

(तदनन्तर गुरुकुल के मैदान में संस्कृत सरस्वती के प्रेमी ब्रह्मचारी टहलते हैं)

पहला:—(पूर्व की ओर देख कर आनन्द सहित आनन्द मूर्ति से) मित्र ! देखो तो सही:—सूर्य्यास्त होगया, पक्षी गण अपने अपने घोंसलों में शान्ति से बैठ गए, एवं दिन भर के थके मांदे पथिक गणों ने जब घर में आश्रय ले लिया तब पूर्व दिशा रूपी सुन्दरी को अलङ्कृत करता हुआ यह चन्द्रदेव उदित हो रहा है ॥ ३६ ॥

आनन्दमूर्तिः—(विलोक्य-सोल्लासम्) सखे प्रियमूर्ते !

रक्तैर्मरीचिनिचयैरुदयाद्रिमेतत्
कुर्वत्सुरक्तमखिलं कमनीयवर्णम् ।
उन्मग्नवन्नभसि काञ्चनकुम्भवन्नु
पूर्वाम्बुराशितलतो द्विजराजबिम्बम् ॥ ३७ ॥

किञ्च ।

इह विहाय विहायसि चन्द्रमा
निजसुवर्णसुवर्णमुपाहितम् ।
न सकलः स कला गतवान्न सन्
धवलयन् वलयं वलते भुवः ॥ ३८ ॥

प्रियमूर्तिः—(इन्दुमण्डलं निभाल्य—सहासविकासम्) सखे ! एष खलु—

सपदि किरणमालाचन्द्रहासेन चन्द्रो
घनतिमिरकदम्बद्वेषणालीं विनाश्य ।
लवणसलिलराशिं वर्द्धयन्नुत्सवारै—
श्चरति कुमुदिनीनां मण्डलं हासयन् सन् ॥ ३९ ॥

आनन्दमूर्तिः—(देख कर प्रसन्नता पूर्वक) मित्र प्रियमूर्ति ! यह चन्द्र मण्डल लाल किरणों से अखिल उदयाचल को रँगता हुआ, पूर्व समुद्र की गोद से स्वर्ण कलश की तरह आकाश की ओर उछल रहा है । तथाः—
अपने सोने के समान उदय कालीन उत्तम वर्ण को छोड़ कर पूर्ण कलावान् हो कर यह चन्द्रमा पृथ्वी मण्डल पर चाँदनी छिटका रहा है ॥ ३७॥३८ ॥

प्रियमूर्तिः—(चन्द्र मण्डल देख कर हास्य सहित प्रसन्न होकर) मित्र ! यह निशा वल्लभ किरण रूपी तलवारों से, निबिड़ अन्धकार रूपी शत्रु सैन्य को नाश कर कुमुदिनी समूह को हँसाता हुआ, एवं लवण समुद्र को उत्साहित (भरती) करता हुआ विचर रहा है । औरः—॥ ३९ ॥

अपिच ।

भिन्दानमिन्दुदृषदामिदमिन्दुविम्ब—
मम्भःशिराः सरभसं करजालिकाभिः ।
निघ्नन्निजामृतकरैर्नितरां चकोरी—
वृन्दक्षुधं लसति मानसतापहारि ॥ ४० ॥

आन०ः—(चन्द्रिकाधवलामिलामालोक्य) सखे !

तारावलीपरिविभूषितचक्रवालं
शीतांशुमण्डलमिदं गगने सुरम्यम् ।
आनन्दयन्निखिलनॄन् स्वमयूखजालैः
सर्वां भुवञ्च विशदां विदधद् विभाति ॥ ४१ ॥

अपिच ।

पीयूषभानुरमलाम्बरमध्यगामी
श्च्योतत्सुधांशुनयनोत्सवदानशौण्डः ।
नक्षत्रपङ्क्तिसमलङ्कृतसुन्दराभ—
आह्लादयत्यखिललोकमनो नितान्तम् ॥ ४२ ॥

यह चन्द्र-विम्ब अपने करसमूह द्वारा (हस्त द्वारा) चन्द्र कान्त मणि से जल स्रावित करता हुआ, तथा अपने किरण रूपी अमृत से चकोराङ्गनाओं की क्षुधा शान्त करता हुआ, मनस्ताप हरण कर रहा है ॥ ४० ॥

आनन्दमूर्तिः—(चन्द्रिका धवलित वसुन्धरा को देखकर) मित्र ! आकाश में सुन्दर तारावली मण्डित, यह रजनीश, अपने किरण मण्डल से मानव गण को आनन्दित करता हुआ, निखिल पृथ्वीतल को शुभ्र बना रहा है । और:—॥ ४१ ॥

नक्षत्र माला की शोभा से अभिराम, चूते हुए अमृत किरणों से नयनानन्द-दायी, मध्य गगन विहारी यह अमृत भानु जगत् के लिए आनन्द बरसा रहा है ॥ ४२ ॥

प्रियमूर्तिः—सखे ! पश्य पश्य ।

विमलकिरणदीप्ते राजिभी राजितेऽयं
वियति शशकलङ्को यामिनीकामिनीन्द्रः ।
नयनकुमुदजालं मोदयन् मोददायी
सचिव वृत इवेशस्तारकैस्तारकेशः ॥ ४३ ॥

अपिच ।

पीयूषवारिपरिपूरितभूरिशीतैः
कर्पूरपूरनिभगौरमरीचिवारैः ।
स्वच्छाम्बरे हिमकरो हिमशीतलोऽसा—
वङ्गानि शीतलयतीव हरँश्च तापम् ॥ ४४ ॥

आ०—(परितो निरीक्ष्य—सहर्षम्) सखे !

चञ्चचन्द्रकलाभिरामनिशि सा हृत्पङ्कजानन्दिनी
चञ्चत्सुन्दरचन्द्रिकाखिलकलारम्येन्दुनिःस्यन्दिनी ।

प्रियमूर्तिः—दोस्त ! देखो

विमलकिरणों की कान्ति से कमनीय गगनमें, शशक-कलङ्क वाला यामिनी (रात्रि) रूपी कामिनी का स्वामी, उस के नेत्र रूपी कुमुद खिलाता हुआ, मंत्रियों से घिरे हुए राजेश्वर की तरह ग्रहों से घिरा हुआ यह तारकेश्वर विराज रहा है ॥ ४३ ॥

और:—शुभ्र गगनमें:—

सुधा-सलिल पूरित अति शीतल, कर्पूर तुल्य श्वेत किरणों वाला, बरफ की तरह शीतल, यह हिम कर, गरमी को दूर करता हुआ, गात्रों को ठंडा कर रहा है ॥ ४४ ॥

आनन्दमूर्तिः—(चारों ओर आनन्द से देखकर) मित्र ! छिटकी चान्दनी से मनोहर रजनी में, हृदय कुमुद को विकसाने वाली, सकल कला से सुन्दर

नेत्रेन्दीवरचारुयुग्मबहलानन्दामृतावर्षिणी
क्षीराम्भोधितरङ्गलास्यचतुरा दिव्यप्रभा राजते ॥४५॥

प्रियमूर्तिः—(अग्रतो विलोक्य—सहर्षस्मितम्) सखे ! अवलोकय इयं नन्दनवाटिकाधवलचन्द्रिकारुचिराम्बरं वसाना विकसित-कुमुदमण्डलच्छलेन हसन्तीव लक्ष्यते । तदेहि, एतस्यां क्वचिद् वर्तुलाकारायां कदलीदलपरिवृतायां कौमुदीसितायां मन्दानिलदलदेलालतापरिमलसुवासितायां सुन्दरस्थल्यामुपविशाव।

[इति परिक्रम्य नाट्येनोपविशतः]

आनन्दमूर्तिः—सखे ! अपि—आकर्णितं किमपि नूतनं वृत्तम् ।

प्रियमूर्तिः—सखे ! किं तन्नूतनं वृत्तम् ।

आनन्द०—यत् काश्मीरराजधानीत आगतेन संदेशहरेण सिंहलकेन कुलपतये श्रावितम् ।

चन्द्रसे झरने वाली, नेत्र रूपी कुमुदों में आनन्दामृत बरसाने वाली, क्षीर-सागर की तरङ्गों में नृत्य करने वाली, चन्द्रमा की यह दिव्य प्रभा शोभित हो रही है ॥ ४५ ॥

प्रियमूर्तिः—(आगे देख कर हर्षसहित मुस्करा कर) मित्र ! देखो, श्वेत चाँदनी की सुन्दर साड़ी पहनी हुई, यह नन्दन वाटिका खिले हुए कमलों के मिस मानों चन्द्रिका का उपहास कर रही है ।
तो आओ, इसी वाटिका में केलों के पत्तों से घिरे हुए, कौमुदी-प्रकाशित, धीरे धीरे चलते हुए मलयानिल से कंपित, खिली हुई इलायची की लता-ओं के परिमल से सुगन्धित सुन्दर गोल चबूतरे पर बैठें ।—

(चल कर बैठते हैं)

आनन्दमूर्तिः—दोस्त ! क्या आपने कोई नयी बात सुनी है ?

प्रियमूर्तिः—वह नयी बात क्या ?

आनन्दमूर्तिः—काश्मीर राजधानी से आए हुए सिंहलक नामक दूतने जो कुलपतिजी को सुनायी ।

प्रिय०—सखे! यदि मम श्रवणपुटपेयं तर्हि श्रावयतु भवान्।

आन०—सखे! त्वयि किमकथनीयं नाम। शृणोषि काश्मीराधिपतिं नृमौलिरत्नं चन्द्रमौलिं राजानम्—

प्रिय०—यस्योदारचरितस्य महनीयानुभावस्य महीश्वरस्य सूनुश्चन्द्रकेतुर्नाम राजकुमारोऽस्ति यः खलु अस्मिन्नेव कुले सकलविद्यार्णवं तीर्णवान्। ततस्ततः।

आन०—सोऽयं राजा चन्द्रमौलिः स्वकीयं पुत्रं चन्द्रकेतुमाज्ञप्तवान् यद्—"वत्स चन्द्रकेतो! त्वया गुरुकुलं गत्वा भगवान् कुलपतिः सविनयं-सादरमभ्यर्थनीयो निजराज्याभिषेकमङ्गलविधिनिर्वहणाय-एतां राजधानीं पुण्यपदपङ्कजद्वयेन पवित्रयितुम्"।

प्रियमूर्तिः—ततस्ततः!

प्रियमूर्तिः—मित्र! यदि सुनने योग्य हो तो मुझे भी आप सुनाइए।

आनन्दमूर्तिः—मित्र! आप से क्या छिपाने योग्य है।
काश्मीर के महाराजाधिराज चन्द्रमौलि नरेश को जानते हो?

प्रियमूर्तिः—जिस उदार चरित्र, महान् तेजस्वी महाराज के पुत्र राजकुमार चन्द्रकेतुने, इसी गुरुकुलमें अखिल विद्या समुद्रको पार किया था, वही न? अच्छा तो आगे।

आनन्दमूर्तिः—उसी राजा चन्द्रमौलिने अपने पुत्र को आज्ञा दी है कि "हे पुत्र! तुम गुरुकुल जाकर भगवान् कुलपतिजीसे विनय सहित प्रार्थना करना कि, मेरे राज्यारोहण मङ्गल की पूर्ति के लिए इस राजधानी को अपने चरण कमलोंसे आप पवित्र करें।"

प्रियमूर्तिः—अच्छा, और आगे?

आनन्दमूर्तिः—तत ओमिति व्याहृत्य कुलपतिं नेतुं युवराजश्च-न्द्रकेतुर्मन्त्रिपुत्रेण वसुचन्द्रेण साकं तुरङ्गमारुह्य समायाति । स श्वोऽत्र समायातेति—

(नेपथ्ये)

॥ ओ३म् ॥ यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवम्०—

इति ब्रह्मचारिणो वेदमन्त्रोच्चारणं कुर्वन्ति ।

प्रियमूर्तिः—(आकर्ण्य) सखे ! शयनवेलेयमस्माकं संजाता, तदेहि आश्रमं प्रति प्रतिष्ठावहे ।

(इति निष्क्रान्तौ ।)

[द्वितीयोऽङ्कस्सम्पूर्णः]

आनन्दमूर्तिः—पिताजी की आज्ञा स्वीकार कर कुलपतिजी को लिवा जाने के लिए युवराज चन्द्रकेतु मंत्री-पुत्र वसुचन्द्र के साथ सुन्दर घोड़े पर कल यहाँ आने वाला है ।

(पर्दे में)

ओ३म् "यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवम्" आदि मंत्रों का उच्चारण ब्रह्मचारी गण करते हैं ।

प्रियमूर्तिः—(सुनकर) मित्र ! हम लोगों का अब शयन-समय समुपस्थित हुआ, तो आओ, अब आश्रम की ओर चलें ।

(दोनों जाते हैं)

द्वितीयाङ्क समाप्त.

तृतीयोऽङ्कः ।

[ततः प्रविशतस्तुरङ्गाधिरूढौ चन्द्रकेतुवसुचन्द्रौ]

चन्द्रकेतुः—(सहर्षम्) वयस्य वसुचन्द्र ! काश्मीरराजधानीतः प्रस्थितयोरावयोरद्य दशमेऽहनि—इयं मन्दाकिनीपरिसरारण्यस्थली नयनविषयमुपेता ।

वसुचन्द्रः—(पुरोऽवलोक्य) राजकुमार ! पश्य । इयं सकलकलंनिनदन्ती दन्तीन्द्रवृन्दविमण्डिततटा तटानोकहनिवहरुचिरा चिरार्जिततपोधनतपस्विपुङ्गवविरचितकुटीरमण्डलविराजिता जिताक्षमुनिवृन्दारकवृन्दलसिता सिताच्छच्छदविविधविहङ्गगणसेविता वितता ततानेकप्रबलोत्तुङ्गरङ्गत्तरङ्गा गङ्गाऽपि दृष्टिपथमुपैति ।

तृतीय अंक ।

(चन्द्रकेतु और वसुचन्द्र घोड़े पर आते हैं)

चन्द्रकेतुः—(हर्षसहित) मित्र वसुचन्द्र ! काश्मीर राजधानी से निकलने के बाद आज दशवें दिन गंगा तटका यह वन हम लोगों के दृष्टि गोचर हुआ ।

वसुचन्द्रः—(आगे देख कर) हे राजकुमार ! देखिए:—

गजराज गण से अलङ्कृत तटवाली, किनारे की वृक्ष-पँक्तियों से मनोहर, दीर्घ काल सञ्चित तप रूपी धनयुक्त तपस्वि-श्रेष्ठों की बनाई कुटियों से विमण्डित, जितेन्द्रिय मुनिवरों से सेवित, श्वेत पंखों वाले राज हंसों से विभूषित, बड़ी बड़ी ऊँची चंचल तरङ्गो वाली, कलकल ध्वनि करती हुई यह विशाल गंगाभी दीख रही है ।

चन्द्रकेतुः—(सर्वतश्चक्षुर्विस्फारयन्—साश्चर्यम्) सखे ! अस्याः सुरसरितः परिसरे विकस्वरनवमल्लिकाकुसुमसौरभसुरभितसकलदिगन्तरालो भीष्मो ग्रीष्मर्तुरवतीर्णवान् । अवतीर्णेऽस्मिन्नर्णोनिधिविशोषिणि शुचौ—

चण्डांशुचण्डकिरणैर्धरणी प्रतप्ता
पङ्कान्वितानि सलिलाशयपल्वलानि ।
क्षीणप्रवाहसहशैवलशैवलिन्यो
भीमा वहन्ति पवना दहनानुलिप्ताः ॥ १ ॥

वसुचन्द्रः—राजकुमार ! पश्य पश्य एते

सूर्यांशुतप्तवपुषो बहुनीलकण्ठा
गुल्मालवालसलिलं विमलं सलीलम् ।
पीत्वा विशन्त्युपविशन्ति ततो निकुञ्जे
शीते प्रसार्य च कलापकलापकं ते ॥ २ ॥

चन्द्रकेतुः—(चारों ओर आँखें फैलाकर आश्चर्य्य सहित) दोस्त ! इस सुर सरिता के किनारे, खिले हुए मालती के नए फूलों की सुगन्धि से सब दिशाओं को सुगन्धित करने वाला, भयानक ग्रीष्म काल भी आगया है ।
(समुद्र को भी सुखाने वाले इस ग्रीष्म ऋतु के आनेपर) प्रचण्ड सूर्य्य की किरणों से पृथ्वी जल रही है ।
तालाब और छोटी छोटी तलैयाँ कीचड़वाली होगयी हैं, नदियाँ धारा क्षीण होने से काई वाली होगयी हैं, मानों आग से लिपटा भयानक पवन चल रहा है ॥ १ ॥

वसुचन्द्रः—राजकुमार देखिए देखिएः—
सूर्य्य किरण से तपे हुए शरीरवाले मोर, लताओं की क्यारियों में खेलते हुए निर्मल-जल पीकर ठण्ढी झाड़ियों में जा रहे हैं, और पंख फैला कर बैठे हैं ॥ २ ॥

अपिच ।

गोवृन्दमस्य च तले सुविशालशाल—
स्येदं प्रचण्डकरचण्डकरावसन्नम् ।
छायासु सत्त्वरमुपेत्य निषद्य तत्र
रोमन्थमाचरति वत्सलवत्सयुक्तम् ॥ ३ ॥

किञ्च ।

कासारवारिणि खरोस्रविदग्धदेहा
विक्षोभ्य नीरनिकरं ननु कासरास्ते ।
तत्र प्रविश्य सहसा रभसोपविश्य
क्लान्तिं विधूय तनुशान्तिसुखं लभन्ते ॥ ४ ॥

चन्द्रकेतुः—(विलोक्य—सकरुणम्) सखे !

सारङ्गसन्ततिरियं करतप्तगात्रा
क्लान्ता वनाद् घनवनं सुवनं वनञ्च ।
गत्वा निपीय शिशिरं शिशिरात्यये सा
शान्ता भवत्यतितरां सहकान्तकान्ता ॥ ५ ॥

और:—

इस अति विशाल शाल वृक्ष के नीचे छाया में सूर्य्य की उग्र किरणों से व्याकुलित गायें, बच्चों के साथ बैठ कर जुगाली कर रही हैं ॥ ३ ॥

और:—ये गरमी से पीड़ित भैंसें, तलैया के पानी को गदला कर के, आनन्द से डुबकी लगाकर शरीर को शीतल कर रही हैं ॥ ४ ॥

चन्द्रकेतुः—(देख कर)

सूर्य्य की गरमी से थके हुए मृग मृगियों के जोड़े एक वनसे घनी झाड़ियों वाले शीतल वन में जाते हैं, और ठंढा जल पीकर शान्ति उपलब्ध करते हैं ॥ ५ ॥

वसुचन्द्रः—(सातङ्कम्) राजकुमार ! अस्मिन्निदाघकाले

अत्युष्णगन्धवहगन्धवहप्रवाहाः
सन्तापयन्ति सकलान् कृतधूलिलीलाः ।
स्वेदापनोदकलितैर्ललितैस्सुयन्त्रैः
शर्माप्नुवन्ति मनुजा बहु वीज्यमानाः ॥ ६ ॥

अपिच ।

कल्पान्तकालकुपितानिलवल्लरीव
सान्द्रप्रभञ्जनघटा यमराजमुक्ता ।
उन्मूलयन्त्यनुदिनं तरुसङ्घमेति
लोकं जिघत्सुरिव लोकभयङ्करीयम् ॥ ७ ॥

चन्द्रकेतुः—(आदित्यबिम्बं विलोक्य—सखेदम्) सखे !

एषोऽम्बरेऽम्बरमणिर्नृमणी रणस्थो
बाणावलीभिरिव तीक्ष्णगभस्तिजालैः ।
भित्वा नृणामिव विपक्षनृणां वपूंषि
स्वेदाम्बुवृन्दमिव वाहयतीव रक्तम् ॥ ८ ॥

वसुचन्द्रः—(भयसे) राजकुमार ! इस गरमी के मौसम में:—
अत्यन्त गरम हवा के झोंके धूलियों से क्रीड़ा करते हुए सब प्राणियों को सन्त्रस्त कर रहे हैं और लोग बिजली के तरह तरह के सुन्दर पंखों से अपने पसीने को सुखा कर आनन्द पा रहे हैं । और:—॥ ६ ॥
प्रलय कालीन कुपित पवन प्रवाह की तरह जगत को भय उत्पन्न करने वाली, यमराज की भेजी हुई ये आँधियाँ संसार को खाती हुई सी, प्रतिदिन वृक्ष पंक्तियों को तोड़ती मरोड़ती हुई आती हैं ॥ ७ ॥
चन्द्रकेतुः—(सूर्य्य मण्डल देख कर खेद सहित) मित्र ! जैसे रणाङ्गन में राजा अपने बाण समूहों से शत्रुओं के शरीर छेदन कर रक्त धारा प्रवाहित करता है, वैसेही आकाश मण्डल स्थित यह सूर्य्य देव अपनी प्रखर किरणों से लोगों की देहों से पसीना बहा रहा है ॥ ८ ॥

वसुचन्द्रः—राजकुमार ! एतादृशि समये—

नीलोत्पलावलिमरन्दकरम्बितासु
नानामहीरुहलतोत्कर राजितासु ।
चण्डांशुदीधितिवितप्तजनस्य चित्तं
वाञ्छत्यतीव सरसीषु विमङ्क्तुमेव ॥ ९ ॥

चन्द्रकेतुः—सखे ! पश्य—

सप्तसप्तिकरतप्तविग्रहं
नीलकण्ठकुलमेत्य सत्वरम् ।
आलवालमभितो मुदन्वितं
गुल्ममण्डपतले निषीदति ॥ १० ॥

वसुचन्द्रः—राजकुमार ! साम्प्रतमसह्यतापोऽयं भगवान्—तिग्मांशुमाली संवृत्तः । तद् यावदयं मन्दकिरणो भवति तावदेतस्य—अशोकवृक्षस्य सान्द्रच्छायायां निबिडतमतृणपिहितभूतले तुरङ्गादवतीर्य तिष्ठावः ।

वसुचन्द्रः—ऐसे समयः—

नीले कमलों के रस से कसैले, और अनेक वृक्षलताओं से शोभित, सरोवर में, सूर्य्य–तापसे तप्त मनुष्यका मन नहाने ही को चाहता है ॥ ९ ॥

चन्द्रकेतुः—मित्र देखोः—

सहस्र रश्मि के किरण समूहों से तपे हुए मयूर मण्डल जल्दी से लता मण्डप में आकर वृक्षों की क्यारियों के आसपास आनन्द से बैठ रहे हैं ॥ १० ॥

वसुचन्द्रः—राजकुमार ! इस समय भगवान् सूर्य्य असह्य तापदायक होगये हैं तो दिन ढलने तक, इसी अशोक वृक्ष की सघन छायामें घास वाली जमीनपर बैठ जायँ ।

चन्द्रकेतुः— एवमस्तु ।

[इति उभौ तुरङ्गमाभ्यामवतीर्य नाथ्येनोपविशतः]

वसुचन्द्रः—(समन्तादवलोक्य–समोदम्) राजकुमार ! रमणीयतर-मिदं स्थानम्–तथाहि—

सेयं गङ्गा वहति पुरतः शीतलाम्भस्तरङ्गा
रम्या वापी विमलसलिला पार्श्वतोऽम्भोरुहाढ्या ।
नानाक्षोणीरुहविततिभिर्वेष्टितप्रान्तभागा
सारण्यानी विलसति परं पृष्ठतश्चेह सान्द्रा ॥११॥

अपिच ।

भुक्त्वा तीरवने तृणाङ्कुरदलं स्वच्छन्दमानन्दतः
सारङ्गैर्विनिपीतशीतलजलै रोमन्थमभ्यस्यते ।
सान्द्रच्छायमहीरुहालिविटपश्रेण्यन्तरालस्थितै—
श्चित्राङ्गैर्विविधैः शकुन्तनिवहैः संकूज्यते मञ्जुलम् ॥ १२ ॥

चन्द्रकेतुः—अच्छा यहीं वैठें !—

(दोनों घोड़े से उतर कर वैठते हैं)

वसुचन्द्रः—(चारों ओर देख कर आनन्द सहित) राजकुमार ! यह स्थान कितना सुन्दर है !—देखिए,

सामने यह शीतल तरङ्गोंवाली गंगा वह रही है, और वगल में कमलों से मण्डित स्वच्छ जल वाली, सुन्दर वावली है, और पिछली ओर घने वृक्ष समूहों से वेष्टित भारी जंगल है । औरः—॥ ११ ॥

गंगा के किनारे के जंगल में स्वच्छन्दता से भरपेट घास खा कर, ठंढा पानी पीकर, ये हरिण आनन्द से जुगाली कर रहे हैं । गाढी छाया वाले वृक्षों की शाखाओं पर बैठे हुए ये चित्र विचित्र रंगवाले विहंग समूह मञ्जुल शब्द कर रहे हैं ॥ १२ ॥

चन्द्रकेतुः—(पार्श्वतो-विलोक्य सस्मितम्) सखे वसुचन्द्र ! पश्य पश्य—

यथा यथा गच्छति वारुणीं द्रुतं
तां पद्मिनीनां पतिरेष सेवितुम् ।
तदीयवार्ताकथनाय गम्यते
द्रुच्छाययया पूर्वदिशे तथा तथा ॥ १३ ॥

वसुचन्द्रः—राजकुमार ! अल्पावशेषं दिनम्, साम्प्रतमसाम्प्रतमिह स्थातुम्, तदेहि, गुरुकुलं प्रति प्रयावः ।

(इति गुरुकुलाभिमुखं परिक्रामतः)

चन्द्रकेतुः—(विमृश्य- सहर्षम्) सखे वसुचन्द्र !

बाल्ये यैरुषितं समं विहसितं प्रक्रीडितं लीलया
यैः साकं पठितं मुदा प्रलपितं प्रेम्णाऽशितं निद्रितम् ।
यैः सार्द्धं व्रतिना मया सनियमं संपालितं तद्व्रतं
तान् द्रष्टुं मम मानसं हि तरलं सोत्कण्ठितं वर्तते ॥ १४ ॥

चन्द्रकेतुः—(एक ओर देख कर और मुस्करा कर) मित्र वसुचन्द्र, देखिए:—जैसे जैसे कमलिनी का स्वामी सूर्य्य, वारुणी (पश्चिम दिशा रूपी स्त्री) रूपी नायिका के पास जल्दी जल्दी जा रहा है, वैसे वैसे वृक्षों की छाया रूपी दूतिका पूर्व दिशा रूपी कामिनी को सूर्य्य की शिकायत करने जा रही है ॥ १३ ॥

वसुचन्द्रः—राजकुमार, अब दिन ढल चुका है, अब यहाँ रहना ठीक नहीं । तो गुरुकुल को ही चलें (गुरुकुल की ओर चलते हैं)

चन्द्रकेतुः—(हर्ष सहित विचारता हुआ) मित्र वसुचन्द्र, बचपन में जिन के साथ रहे, हँसे, खेले, पढ़े, प्रेमसे बातचीत की, और खाए तथा सोए, एवं जिन के साथ नियम पूर्वक व्रती बन के रहे, उन सहाध्यायियों से मिलने के लिए आज मेरा मन कितना उत्सुक हो रहा है ॥ १४ ॥

[इति परिक्रम्य–आश्रमानवलोकयन्–पुनः सोल्लासम्]

सखे ! पश्य पश्य त एते ।

चञ्चच्चन्द्रकिचन्द्रकालिरुचिरज्योत्स्नाप्रदीप्तान्तराः
संखेलन्मृगबालजालललिता लोलल्लतापल्लवाः ।
बालोद्यानलसद्द्रुमोत्तमगणाः शुष्यत्पिशङ्गाम्बरा
रम्भास्तम्भविशोभिहोमभवनाश्चित्रद्रुमा आश्रमाः १५

वसुचन्द्रः—राजकुमार ! इयमुत्तरेण विविधपुष्पमालासुगन्धिताशेषभागा पुष्पवाटिका शोभते ।

चन्द्रकेतुः—(निर्वर्ण्य–सकौतुकानुरागम्) सखे !

सा ब्रह्मचारिबटुभिः पटुभिः स्वहस्त—
पद्मस्थिताम्बुघटवर्द्धितबालवृक्षा ।
आनन्दिनीति मनसां सुमनोमनोज्ञा
ख्याता चकास्ति ननु नन्दनवाटिकेयम् ॥ १६ ॥

(चलकर आश्रमों को देखता हुआ प्रसन्नता पूर्वक)

मित्र, देखिए !—

मयूरों के चमकते हुए पंखों की सुन्दर कान्ति से प्रकाशित, खेलते हुए हरिणों के बच्चों से मनोहर, हिलती हुई लताओं के पत्तों वाला, ब्रह्मचारियों से सुशोभित, छोटे उद्यानों से रमणीय, सूखती हुई पीली धोतियों से सुन्दर, केलों के स्तम्भों से अलङ्कृत यज्ञशाला से युक्त चित्र विचित्र वृक्षों से मण्डित वही यह आश्रम है ॥ १५ ॥

वसुचन्द्रः—हे कुमार ! यह इधर उत्तर की ओर अनेक फूलों के सुगन्ध से सुगन्धित पुष्पवाटिका शोभित हो रही है ।

चन्द्रकेतुः—(देख कर उत्कण्ठा और प्रेम सहित) सखे !

चतुर ब्रह्मचारी बटुओं के हाथों से जिसके बाल वृक्ष सींचे गए हैं, ऐसी मन को लुभाने वाली, फूलों से मनोहर, देवों को भी मुग्ध करने वाली, मानों यही नन्दनवाटिका है ॥ १६ ॥

(तदभिमुखं परिवृत्य-सप्रेमातिशयम्) पुनर्वसुचन्द्रं प्रति सखे !

शाखावलम्बिकलचन्द्रकचन्द्रकी मा-
मालोक्य नृत्यति मुदा परिचित्य सोऽयम् ।
नीवारजालकवलैः परिवर्द्धितः स
प्रेक्ष्यैव मां द्रुतमिहैति कुरङ्ग एषः ॥ १७ ॥

[इति समीपागतं तं हरिणं करयोर्गृह्णाति ।]

(गृहीत्वा च स्वगतम्) अहो पशूनामपि वात्सल्यं मां स्वजातीयानामिव नितरामाकुलयति । (प्रकाशम्) वत्स कुरङ्ग ! गच्छ भुङ्क्ष्व दर्भाङ्कुराणि—इति विसृज्य तं मृगमग्रे प्रसर्पति ।

[कतिचित् पदानि गत्वा—सहर्षस्मितम्—वसुचन्द्रं प्रति]

सखे ! पुरस्तादवलोकय ।

सद्ब्रह्मचारिबटुराजिविराजितानि
वेदोक्तमन्त्रगणघोषसुघोषितानि ।

(उसकी ओर जाकर अति प्रेम से) फिर वसुचन्द्र से:—

डालियों पर सुन्दर पंखों को पसारे हुए यह मोर, मुझे देख कर और पहचान कर आनन्द से नाच रहा है, और मुनि—अन्नों के ग्रास से पाला पोसा हुआ यह हरिण का बच्चा मुझे देख कर मेरी ओर दौड़ता आ रहा है ॥ १७ ॥

(समीप में आए उस बच्चे को गोद में लेता है)

(गोदी में ले कर मन में)

अहा ! पशु का भी प्रेम मुझे सजाति की तरह अति व्याकुल कर रहा है । (प्रकट) । प्रिय बच्चे ! जाओ घास खाओ !

(उस मृग को छोड़ आगे चलता है)

(कुछ कदम आगे चल कर हर्ष सहित वसुचन्द्र से)

मित्र ! आगे देखोः—

उत्तम ब्रह्मचारियों से विराजित, वेद ध्वनि से आघोषित, हवन की उत्तम

एतानि भान्ति वरमाश्रममन्दिराणि
होमोत्थितोत्तमसुगन्धसुगन्धितानि ॥ १८ ॥

वसुचन्द्रः—(पुरो विलोक्य–साकूतम्) राजकुमार ! कोऽयमित एव आगच्छति ब्रह्मचारियुगलेनानुगतः ?

चन्द्रकेतुः—(विलोक्य–सहर्षम्) कथं स एवायं भगवान् कुलपतिः प्रियमित्रदेशमित्राभ्यां सह इत एवायाति । तदेहि, तत्रभवतो गुरुचरणस्य सन्निहितौ भवावः । (इति परिक्रामतः)

(ततः प्रविशति पटाक्षेपेण भगवान्, कुलपतिः, ब्रह्मचारिणौ–प्रियमित्रदेशमित्रौ च)

कुलपतिः—(विमृश्य–सहर्षम्) अये ! नमितनिखिलनृपतिमण्डलमौलिमाणिक्यप्रभाप्रभासितसितचरणकमलयुगलः सकलोद्धताराति-मतङ्गजपुञ्जपञ्चाननश्चन्द्रवंशदीपको राजा चन्द्रमौलिः कृतब्रह्म-चर्यव्रतपालनस्य सकलकलापारदृश्वनो निजतनयस्य चन्द्रकेतो

सुगन्धि से सुगन्धित, यह उत्तम आश्रम शोभ रहा है ॥ १८ ॥

वसुचन्द्रः—(आगे कुतूहल पूर्वक देख कर) राजकुमार ! दो ब्रह्मचारियों के साथ ये कौन इधर आ रहे हैं ।

चन्द्रकेतुः—(देख कर हर्ष सहित) अहा ! पूजनीय कुलपतिजी, प्रियमित्र और देशमित्र के साथ इधर ही आ रहे हैं, तो आओ पूज्य गुरुदेव के पास ही चलें (दोनों जाते हैं)

(ब्रह्मचारी प्रियमित्र और देशमित्र सहित भगवान् कुलपति आते हैं)

कुलपतिः—(विचार कर आनन्द सहित)

वन्दन करने के लिए आए हुए बड़े बड़े राजाओं के मुकुट मणियों की कान्ति से शोभित चरण–कमल वाले, बड़े बड़े घमण्डी नरेश रूपी हाथियों के मर्दन के लिए सिंह–तुल्य चन्द्रवंश के दीपक महाराज चन्द्रमौलि ने, ब्रह्मचर्य्य व्रत को समाप्त करने वाले, सकलकलासंपन्न अपने पुत्र राजकुमार चन्द्रकेतु

राज्याभिषेकं कर्तुंकामोऽस्मन्निमन्त्रणाय मन्त्रिपुत्रेण सत्रा राजपुत्रमेव प्रहितवान् ।

प्रियमित्रः—भगवन् ! एवं राज्ञा गुरुचरणे निरतिशया भक्तिः प्रदर्शिता ।

देशमित्रः—भगवन् ! किमुच्यताम्, अस्य महानुभावस्य क्षितिपतेः—सद्वृत्तप्रवणप्रावीण्यम्, यो नक्तन्दिवम्—

तपोधनानां महतां मुनीना-
मग्रे भवंस्तिष्ठति नम्रमौलिः ।
सद्धर्मलोपैकविधौ पटूनां
पुरो नृणाश्चास्त्यविनम्रमौलिः ॥ १९ ॥

कुलपतिः—(चन्द्रकेतुमवलोक्य-सहर्षम्)

विद्यासमुद्रैकचरो मरालो
यशःस्रवन्तीप्रभवाद्रिशैलः ।
आवर्जितारातिशताङ्कतेतुः
प्राप्तो दृशां मे पथि चन्द्रकेतुः ॥ २० ॥

के राज्याभिषेक करने की इच्छा से, मुझे निमन्त्रण देने के लिए मंत्रीपुत्र के साथ राजकुमार चन्द्रकेतु को ही भेजा है ।

प्रियमित्रः—गुरुदेव ! इस प्रकार महाराज ने पूज्य गुरु चरणों पर अनुपम भक्ति प्रदर्शित की है ।

देशमित्रः—भगवन् ! इस महा तेजस्वी राजा की सदाचार में प्रवृत्ति की प्रवीणता का क्या कहना ! जो रात दिनः—
बड़े बड़े तपस्वी मुनियों के आगे सदा शिर झुकाए रहता है, और धर्मद्वेषी पापियों के समक्ष हमेशा अपना मस्तक ऊँचा रखता है ॥ १९ ॥

(चन्द्रकेतु को देख कर)

कुलपतिः—विद्यारूपी समुद्र में विचरने वाले हंस के तुल्य, यशरूपी निर्झरिणी के बहाने में पर्वत समान, शत्रुओं के रथों की पताकाओं को झुकाने वाले, राजकुमार चन्द्रकेतु ही हमारे सामने उपस्थित हैं ॥ २० ॥

चन्द्रकेतुः—(ससम्भ्रममुपगम्य–चरणावुपगृह्य च)

गुरुं वेदोपदेष्टारं वेदविज्ञं महामुनिम् ।
चन्द्रकेतुरयं शिष्यो वन्दते तत्त्ववेदिनम् ॥ २१ ॥

कुलपतिः—(सादरमालिङ्ग्य) वत्स चन्द्रकेतो !

लभस्व राज्यश्रियमञ्जसा प्रजा
भवन्तु भव्याभ्युदयप्रयोजनाः ।
यशस्सरिन्नीरतरन्नरा वरं
हरन्तु तापं तव वैरिसम्भवम् ॥ २२ ॥

चन्द्रकेतुः—(कुलपतिं प्रति) भगवन् ! अयं मन्त्रिपुत्रो वसुचन्द्रो भगवन्तं वन्दते ।

कुलपतिः—वत्स वसुचन्द्र ! त्वमस्य चन्द्रकेतोर्मन्त्रिपदं चिरायोपभुङ्क्ष्व ।

प्रियमित्रः—(चन्द्रकेतुं प्रति) आर्य ! अयं चिरविरहदुःखाकुलो भवन्तं प्रियमित्रो नमस्यति ।

चन्द्रकेतुः—(आदर सहित पास आकर और पैर छूकर) वेदोपदेष्टा, वेदवेत्ता, तथा तत्त्वज्ञानी महामुनि गुरुदेव को यह शिष्य चन्द्रकेतु अभिवादन करता है ॥ २१ ॥

कुलपतिः—(प्रेम सहित आलिङ्गन करके) पुत्र चन्द्रकेतो ! तू जल्दी से राज्य लक्ष्मी को प्राप्त कर, तेरी प्रजा अभ्युदय (इह लौकिक उन्नति) और निश्रेयस (मुक्ति) से युक्त हो, तेरे यश रूपी नदी के नीर में तरने वाले तेरे देश के नर शत्रु–संताप को शमन करें ॥ २२ ॥

चन्द्रकेतुः—(कुलपति से) गुरुदेव ! ये हमारे मंत्री जी के पुत्र वसुचन्द्र आप को प्रणाम करते हैं ।

कुलपतिः—प्रिय वसुचन्द्र ! तू इस चन्द्रकेतु के मंत्रीपद को चिर काल तक धारण कर ।

प्रियमित्रः—(चन्द्रकेतु से) यह चिर काल विरहित प्रियमित्र आपकी वन्दना करता है ।

चन्द्रकेतुः—(सहर्षमालिङ्ग्य) वत्स प्रियमित्र ! अद्य ते मुखचन्द्रं विलोक्य चिरवियोगार्तिविकलेन मदीयहृदयाम्बुधिनाऽतिवेलमुद्वेल्लितम्, चिरपिपासिताभ्यां नयनचकोरीभ्यां चातिमात्रमाह्लादितम् ।

देशमित्रः—(उपसृत्य–चन्द्रकेतुं प्रति) आर्य ! अयं भवन्नियोगानुवर्ती देशमित्रः प्रणमति ।

चन्द्रकेतुः—(गाढमालिङ्ग्य) वत्स देशमित्र ! त्वया स्वकीयेन चन्द्रकिरणकोमलेन बाहुयुगलेन निपीड्यमानं ममाद्य चिरदग्धहृदयं शीतलीकृतम् ।

चन्द्रकेतुः—(प्रियमित्रं–प्रति) वत्स ! वन्दस्व मन्त्रिपुत्रमेनं वसुचन्द्रम् ।

(प्रियमित्रदेशमित्रवसुचन्द्रा मिथो यथोचितमाचरन्ति)

कुलपतिः—(सहर्षम्) वत्स चन्द्रकेतो ! अपि कुशली महाराजः ?

चन्द्रकेतुः—भगवत्प्रसादेन कुशली महाराजः ।

कुलपतिः—(नेपथ्याभिमुखः) कः कोऽत्र भोः ।

चन्द्रकेतुः—(हर्ष सहित आलिङ्गन करके) भाई प्रियमित्र ! आज तेरे मुखचन्द्र को अवलोकन कर दीर्घ काल वियोगी मेरा हृदयसागर भर गया; और प्यासी ये दोनों आँखें तृप्त हो गयीं ।

देशमित्रः—(चन्द्रकेतु के पास जा कर) भाई ! आज्ञाकारी यह देशमित्र आप को प्रणाम करता है ।

चन्द्रकेतुः—(गाढालिंगन कर) प्रिय देशमित्र ! चन्द्र किरण के समान कोमल तेरे बाहु युगल से स्पर्श किया हुआ यह चिरसन्तप्त हृदय शीतल होगया ।

चन्द्रकेतुः—(प्रियमित्र से) वत्स ! इस मंत्रीपुत्र वसुचन्द्र को प्रणाम करो ।

(प्रियमित्र, देशमित्र, और वसुचन्द्र परस्पर यथायोग्य प्रणाम आदि करते हैं)

कुलपतिः—(हर्ष सहित) पुत्र चन्द्रकेतु ! महाराज प्रसन्न तो हैं न ?

चन्द्रकेतुः—गुरुदेव की कृपा से महाराज प्रसन्न हैं ।

कुलपतिः—(नेपथ्य की ओर देख कर) अरे भाई कोई है यहाँ ?

(प्रविश्य)

वटुः—किमाज्ञापयति आचार्यः ।

कुलपतिः—आहूयन्तां निखिलब्रह्मचारिणः ।

वटुः—यदादिशति भगवान् । (इति निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशन्ति ब्रह्मचारिणः)

ब्रह्मचारिणः—(हर्षातिशयं रूपयन्तः) अये ! सोऽयम्—

विविधविधिविधिज्ञः सर्वशास्त्रार्थविज्ञः
कलितनिगमसारः प्राप्तशौर्यातिसारः ।
कृतगुरुकुलवासो जैत्रलक्ष्मीनिवासो
विदलितरिपुकेतुः प्राप्तवाँश्चन्द्रकेतुः ॥ २३ ॥

अथ च ।

मुखारविन्दानि गतानि फुल्लतां
मनोम्बुधिर्मोदतरङ्गसङ्गवान् ।
निरीक्ष्य नो नेत्रचकोरपङ्क्तयः
प्रहृष्टवत्यो नरचन्द्रचन्द्रिकाम् ॥ २४ ॥

ब्रह्मचारीः—(प्रवेश कर) आचार्य्यजी ! क्या आज्ञा है ?

कुलपतिः—सब ब्रह्मचारियों को बुलाओ ।

ब्रह्मचारीः—जैसी आज्ञा । (जाता है) (ब्रह्मचारी आते हैं)

सब ब्रह्मचारीः—(अति प्रसन्नता से देखते हुए)

सब राजनीति आदि विधियों को जानने वाले, सब शास्त्रों के तत्त्वज्ञ, वैदिक, धर्मज्ञ, अति पराक्रम शाली, विजय लक्ष्मी के निवास स्थान, शत्रुओं की ध्वजाओं को ध्वंस करनें वाले, विद्याव्रत स्नातक यह वही राजकुमार चन्द्र-केतु आए हैं ॥ २३ ॥

औरः—नररूपी चन्द्र की कान्ति-चन्द्रिका को देख कर हमारे मुखारविन्द खिल गए, हृदयसागर आनन्द-तरङ्ग से तरङ्गित हो गया और नेत्र रूपी चकोर प्रसन्न हो गए ॥ २४ ॥

(सविमर्षस्मितं पुनः)

त्विषां निधिः केवल एष न प्रभुः
कलानिधिः कर्तुमिमानि नेश्वरः ।
द्वयोर्विधेयं कृतिनाऽमुना कृतं
महौजसां सन्ति विचित्रवृत्तयः ॥ २५ ॥

(इति सर्वे समुपसृत्य प्राञ्जल्यो भूत्वा प्रणमन्ति—चन्द्रकेतुश्च सगद्गदकण्ठं सर्वानाशीर्भिः संभावयति)

(नेपथ्ये)

भो भो ब्रह्मचारिणः ! अयं भगवान् गभस्तिमाली सकलं भुवनवलयं निजचण्डकिरणैः सुतरां सन्ताप्य सम्प्रति वरुणपाशैर्नियन्त्रितः क्षीणाशेषप्रतापमण्डलो मण्डलीभूय पश्चिमाम्बुनिधौ निमज्जति ।

(सर्वे आकर्णयन्ति)

(फिर विचार सहित प्रसन्नता से) अकेला तेजका भंडार सूर्य्य भी इस कार्य्य में समर्थ नहीं, और कलानिधि चन्द्र भी इसमें असमर्थ ही है; चन्द्र और सूर्य्य दोनों के कार्य को अकेले इस महानुभावने पूर्ण किया, ओजस्वी पुरुषों की वृत्तियाँ विलक्षण ही होती हैं ॥ २५ ॥

(सब पास आकर हाथ जोड़ कर प्रणाम करते हैं और चन्द्रकेतु गद् गद् हृदय से सब को आशीर्वाद देता है)।

(नेपथ्य में)। हे ब्रह्मचारियो ! यह भगवान् सहस्ररश्मि सूर्य्य, संपूर्ण पृथ्वी मण्डल को अपनी प्रचण्ड किरणों से तपा कर अब वरुण देव (पश्चिम दिशा) के पाश से जकड़ा जाकर, निस्तेज मण्डल हो कर पश्चिम सागर में डूब रहा है।

(सब सुनते हैं)

कुलपतिः—(आकर्ण्य–सर्वान् प्रति) अयि ब्रह्मचारिणः ! पश्यत !

मार्तण्डमण्डलमिदं वलयं रसाया—
स्सन्ताप्य तिग्मकिरणैरखिलाँश्च जीवान् ।
रक्ताम्बरं परिदधानमितं प्रतीचीं
तप्तुं तपो नु गिरिकन्दरिकां प्रविष्टम् ॥ २६ ॥

तदियं युष्माकं प्रदोषसन्ध्यावेला संवृत्ता, तद् व्रजत यूयं सन्ध्यानुष्ठानाय–वयमपि सायन्तनं सपर्य्याविधिं विधातुं व्रजामः ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वेऽपि)

[समाप्तोऽयं तृतीयोऽङ्कः]

कुलपतिः—(सुन कर सब से) हे ब्रह्मचारियो ! देखो यह सूर्य्य संपूर्ण प्राणि समूह को उग्र किरणों से तपा कर, अब पश्चिम दिशा में झुक कर, लाल आकाश रूपी वस्त्र को धारण कर, मानों पर्वत गुफा में तपश्चरण के लिए प्रवेश कर रहा है ॥ २६ ॥
तो यह तुम्हारा सायं कालीन संध्या का समय हो गया है अतः सब सन्ध्योपासन के लिए जल्दी जाओ, मैं भी योगानुष्ठान के लिए जल्दी जाता हूँ ।

(सब जाते हैं)

तृतीयाङ्क समाप्त.

चतुर्थोऽङ्कः ।

[ततः प्रविशति चन्द्रकेतुः प्रियमित्रश्च]

प्रियमित्रः—ततस्ततः ।

चन्द्रकेतुः—अनन्तरं तपोवनमीक्षमाणस्तातः प्रियवयस्येन चन्द्रवर्णेन सह राजधानीं प्रति निवृत्तः ।

प्रियमित्रः—ततस्ततः ।

चन्द्रकेतुः—ततो राजधानीमागत्य सौधमधिष्ठाय वृद्धविरागो विचारचतुरं प्रकृतिमधुरं निसर्गशान्तं नीतिमन्त्वं वृद्धामात्यं मणिचन्द्रमाहूय सर्वं स्वकीयमिममभिलाषं कथितवान् ।

प्रियमित्रः—ततस्ततः ।

चन्द्रकेतुः—तदनु तेन समं चिरं सम्मन्त्र्य ज्योतिर्विदमाहूय राज्याभिषेकतिथिं निश्चित्य चाहं मन्त्रिपुत्रेण वसुचन्द्रेण सह कुलपतिनिमन्त्रणायेह प्रेषितः ।

चतुर्थ अंक ।

(चन्द्रकेतु और प्रियमित्र का प्रवेश)

प्रियमित्रः—हाँ तो आगेः—

चन्द्रकेतुः—फिर तपोवन को देखते हुए पूज्य पिताजी अपने प्यारे मित्र चन्द्रवर्ण के साथ राजधानी को लौटे ।

प्रियमित्रः—तब फिरः—

चन्द्रकेतुः—फिर राजधानी में आकर और महल में बैठ कर वैराग्यशील पिताजी ने, विचार में चतुर, स्वभाव में मधुर, और शान्त, नीतिमान् वृद्ध-मंत्री मणिचन्द्र को बुला कर अपना सब मनोरथ कह सुनाया ।

प्रियमित्रः—अच्छा तोः—

चन्द्रकेतुः—इसके बाद उनके साथ देर तक सलाह कर के और ज्योतिषी को बुला कर राज्याभिषेक की तिथि निश्चित कर मंत्रीपुत्र वसुचन्द्र के साथ मुझे कुलपतिजी को निमन्त्रण देने के लिए यहाँ भेजा है ।

(प्रविश्य)

देशमित्रः—आर्य चन्द्रकेतो ! भगवान् कुलपतिर्भवन्तमाकारयति ।

चन्द्रकेतुः—वत्स देशमित्र ! क्वास्ति भगवान् कुलपतिः ?

देशमित्रः—एष यज्ञशालायां तिष्ठति ।

(ततः प्रविशति कुलपतिः)

देशमित्रः—(उपसृत्य) भगवन् ! एष चन्द्रकेतुः प्रणमति ।

[चन्द्रकेतुः प्रणम्योपविशति]

कुलपतिः—(सहर्षम्) वत्स चन्द्रकेतो ! अपि ते तातो महाराजश्चन्द्रमौलिः सानन्दमनुरञ्जयति प्रकृतीः ? प्रकृतयश्चानुरक्तास्सन्ति परं विद्वन्मानससरोवरराजहंसे महाराजे चन्द्रकुलावतंसे ?

चन्द्रकेतुः—भगवन् ! सर्वमस्ति भगवत्प्रसादेन ! परमिदानीं विरक्त इव लक्ष्यते तातः ।

(प्रवेश कर)

देशमित्रः—भाई चन्द्रकेतुजी ! पूज्य आचार्य्य जी आप को बुलाते हैं ।

चन्द्रकेतुः—भाई देशमित्र ! गुरुदेव कहाँ हैं ?

देशमित्रः—ये यज्ञ शाला में रहे ।

(कुलपति जी आते हैं)

देशमित्रः—(पास जाकर) भगवन्, चन्द्रकेतु आ गए हैं ।

(चन्द्रकेतु प्रणाम कर बैठ जाता है)

कुलपतिः—(आनन्द से) पुत्र चन्द्रकेतु, तुह्मारे पिता चन्द्रमौलि आनन्द पूर्वक प्रजारंजन में तत्पर तो हैं न ? और प्रजा भी विद्वानों के मानस रूपी सरोवर के राजहंस चन्द्र कुल के अवतंस (श्रेष्ठ) महाराज में अनुरक्त तो है ?

चन्द्रकेतुः—गुरुदेव ! आपकी कृपा से सब ठीक ही है, परन्तु इस समय पिताजी वैराग्यवान् से मालूम पड़ते हैं ।

कुलपतिः—वत्स ! विरक्ततायां को हेतुः ।

चन्द्रकेतुः—भगवन् ! यतःप्रभृति तातस्तपोवनं निरीक्ष्य राजधानीं समागतस्ततःप्रभृति विरागः प्रतिदिनमुपचीयमान एव प्रतीयते ।

कुलपतिः—वत्स ! तत् कदा त्वामभिषेक्तुमभिलषति तातः ।

चन्द्रकेतुः—अस्मिन्नेव हायने ।

कुलपतिः—(सदृष्टिक्षेपम्) कः कोऽत्र भोः ।

(प्रविश्य)

बटुः—भगवन् ! आदिश्यताम् ।

कुलपतिः—वत्स हर्ष ! ज्ञायतां का वेलेति ।

बटुः—यदादिशति भगवान् ।

(इति निष्क्रान्तः)

कुलपतिः—किमस्मिन्नेव हायने ?

कुलपतिः—पुत्र ! वैराग्य होने का क्या कारण है ?

चन्द्रकेतुः—गुरुदेव ! जब से पिताजी तपोवन देख कर राजधानी को लौटे हैं, तब से उत्तरोत्तर उनका वैराग्य बढ़ता ही जाता है ।

कुलपतिः—तो पिताजी तुझे कब राजगद्दी पर बैठावेंगे ?

चन्द्रकेतुः—इसी वर्ष ।

कुलपतिः—(देखते हुए,) अरे क्या यहाँ कोई है ?

(प्रवेश करके)

बटुः—गुरुदेव जी ! आज्ञा दीजिए ।

कुलपतिः—पुत्र हर्ष ! देखो क्या समय हुआ है ।

बटुः—जो आज्ञा (जाता है)

कुलपतिः—क्या इसी वर्ष ?

चन्द्रकेतुः—आम् भगवन्! अस्मिन्नेव वर्षे अस्यां गतायुषि प्रावृषि।

(प्रविश्य)

बटुः—भगवन्! साम्प्रतमम्बरतलमध्यमलङ्करोति भगवानम्बर-मणिः।

कुलपतिः—वत्स चन्द्रकेतो! मध्याह्नवेलेयमुपस्थिता, तदागच्छ माध्यन्दिनीं क्रियां निर्वर्तयितुम्।

[इति निष्क्रान्ताः सर्वे]

(ततः प्रविशतो नन्दनवाटिकायामुपविष्टौ ब्रह्मचारिणौ)

एकः—(आकाशमवलोक्य—सहर्षम्) अये!

वर्षाकालः कलितककुभोल्लासलीलः सलीलं
सम्प्राप्तोऽयं प्रकटितघनाडम्बरोन्वम्बरान्तः।
हंसश्रेणी हिमगिरिमभिव्योम्न आबद्धमाला
मालेवेयं पवनचलिता शोभते सम्पतन्ती ॥ १ ॥

चन्द्रकेतुः—जी हाँ गुरुजी, इसी वर्ष वर्षाऋतु व्यतीत होने पर।

(आकर)

बटुः—गुरुदेव! इस समय सूर्य्य नारायण मध्य गगन में विराज रहे हैं।

कुलपतिः—पुत्र चन्द्रकेतो! अब दो पहर का समय हो गया है, तो आओ भोजनादि कर लें। (सब जाते हैं)

(नन्दनवाटिका में दो ब्रह्मचारी आते हैं)

एकः—(आकाश की ओर देख कर प्रसन्नता से)
अर्जुन नामक वृक्षों के फूलों को खिलाने वाली एवं आकाश में बड़े बड़े बादलों के मण्डलों को प्रकटाने वाली यह वर्षा ऋतु आ गयी है। आकाश में पंक्तिबद्ध हिमालय की ओर जाती हुई यह हंसों की श्रेणियाँ वायु से सजाई हुई फूलों की माला की तरह शोभित हो रही हैं ॥ १ ॥

अपि चैते—

उत्तुङ्गशैलनिभनीलवलाहकास्ते
वातेरिता वियति संलुलिता भवन्ति ।
निर्वर्ण्य ताँस्तरुतलेषु शिखण्डिवृन्दं
मत्तं मदेन मुदितं विदधाति नृत्यम् ॥ २ ॥

[शीतलसुगन्धानिलमाघ्राय–सोल्लासमानन्दमूर्तिं प्रति] सखे !

कादम्बपुष्पनिवहोत्थसुगन्धवाहाः
कर्पूरपुञ्जसमशीतलगन्धवाहाः ।
अम्भोधरोदरविनिर्गतबिन्दुवाहा
मेघागमे सुखकरा विपिने वहन्ति ॥ ३ ॥

आनन्दमूर्तिः—सखे प्रियमूर्त्ते ! पश्य–अयम्

गभीरमुग्धाम्बुमुचां कदम्बको
दिशोऽखिला व्याप्य नभोङ्गणे नदन् ।

और ये:—

ऊँचे ऊँचे पहाड़ों के समान काले काले बादल, वायु से धकेले जाकर परस्पर टकराते हैं, जिन्हें देख कर वृक्षों के नीचे बैठे हुए, मद मत्त मोरों का मण्डल, आनन्द नृत्य कर रहा है ॥ २ ॥

(शीतल सुगन्धित वर्षा कालीन वायु को सूँघ कर आनन्द सहित आनन्द मूर्ति से) मित्र ! कदम्बों के पुष्प समूहों से उत्पन्न हुए सुगन्ध को ले जाने वाला, कपूर पुञ्ज के समान शीतल, बादलों में से निकले हुए जल कणों को ग्रहण करने वाला, वर्षा काल के आगमन–अवसर पर जंगल में यह सुख-कर वायु बह रहा है ॥ ३ ॥

आनन्दमूर्तिः—दोस्त प्रियमूर्ति ! देखो:—

गंभीर एवं मनोहर जलधरों (बादलों) का यह मण्डल, संपूर्ण दिशाओं

मयूरवृन्दं मदयन् स्वगर्जितैः
क्वचित्क्वचित् सिञ्चति भूमिमम्बुभिः ॥ ४ ॥

[परितो विलोक्य पुनः साश्चर्यहर्षस्मितम्]

व्योम्नस्तलं विदधती परिपीतवर्णं
सौवर्णवर्णनिभकान्तिमती दिगन्ते ।
विद्युल्लता रुचिरवारिमुचां चयेषु
सेयं बिभीषणरवेषु चमत्करोति ॥ ५ ॥

अपिच ।

कादम्बिनीमध्यलसत्पिशङ्गा
सौदामनीनां ततिरम्बरान्तः ।
भुजङ्गमीनां रसनावलीव
लोला चमत्कारमियं तनोति ॥ ६ ॥

प्रियमूर्तिः—सखे ! पश्य—इयम्—

तापापनोदनकृते कृतहर्षवर्षा
वर्षानटीह वियदङ्गनरङ्गमेत्य ।

को घेर कर, आकाश वेदिका पर गर्जता हुआ, और अपनी गंभीर ध्वनि से मोरों को मस्त करता हुआ, कहीं कहीं बरस रहा है ॥ ४ ॥

(चारों ओर देख कर आश्चर्य्य और हर्ष सहित)

क्षितिज में आकाश तल को पीला करती हुई, सोने के समान कान्ति वाली, यह विद्युत्-लता भयंकर गर्जन वाले सुन्दर बादलों के टुकड़ों में चमक रही है । औरः— ॥ ५ ॥

गगन मध्य में मेघ मालाओं के बीच पीली पीली शोभती हुई, विजलियों की पंक्तियाँ साँपिनी की चंचल जीभ की तरह लप लपा रही हैं ॥ ६ ॥

प्रियमूर्तिः—इस समय बिजली रूपी सुन्दर आँखों वाली, यह वर्षा रूपी नटी, सन्ताप को दूर करने के लिए, गगन वेदिका रूपी रंग मंच पर आकर, हर्ष

उत्तुङ्गनीरदमृदङ्गनिनादभङ्गी—
संगीतकं नु तनुते तडिदन्तनेत्रा ॥ ७ ॥

तथाहि ।

क्वचित्पयोवाहकसन्ततिस्ततो
मतङ्गजानां भजते विडम्बनाम् ।
क्वचिच्च पञ्चाननरूपतामिमे
पयोमुचो बिभ्रति घोरदर्शनाः ॥ ८ ॥

किंच ।

इमे समादाय पयांसि वारिधेः
प्रमत्तनागाकृतयोऽम्बुवाहकाः ।
विधाय गम्भीरनिनादगर्जितं
चरन्त्यहो दन्तिनिभास्समन्ततः ॥ ९ ॥

आनन्दमूर्तिः—(विहस्य) सखे ! निरीक्ष्यन्तामितः, एते—
सिञ्चन्ति केचिदिभराजिरिवाम्बुवाहा—
धाराभिरत्र वसुधामिव हस्तनीरैः ।

की वर्षा करती हुई, बड़े बड़े बादलों के टुकड़े रूपी मृदङ्ग की आवाज के अनुसार सङ्गीत कर रही है (गीतं वाद्यञ्च नृत्यञ्च त्रयं सङ्गीतमुच्यते)॥७॥

औरः—

कहीं तो जलद मण्डल (बादल) मस्त हाथी की नकल कर रहा है, और कहीं डरावने होकर सिंह की तरह आकृति धारण कर रहा है ॥ ८ ॥

तथाः—अहा ! ये गजाकार बादल समुद्र जल लेकर गंभीर गर्जना करते हुए चारों ओर हाथी के तुल्य विहार करते हैं ॥ ९ ॥

आनन्दमूर्ति—(हँस कर) सखे ! इधर देखो !

कई बादल रूपी हाथी, अपने सूँड़ रूपी धाराओं से भूमि को सींच

केचित्तडित्ततिविलोलविलासलीला—
दन्तीन्द्रदन्तसुषमां कलयन्ति नूनम् ॥ १० ॥

प्रियमूर्तिः—(निर्वर्ण्य–सकौतुकम्) सखे ! पश्य पश्य । इतः किमपि रमणीयमद्भुतञ्च वर्तते । तथाहि ।

कौचिद्गजाविव वियद्गतवारिवाहौ
मत्तौ रणाङ्गणगतौ निजपाटवेन ।
शुण्डाभिघातनिपतन्मदवारिभिर्वा
तौ सिञ्चतो रणभुवं धरणीमिवाद्भिः ॥ ११ ॥

अपिच ।

केचिन्मृगेन्द्रा इव भीतिदायिनः
केचित्कुरङ्गा इव चित्तहारिणः ।
केचित्तुरङ्गा इव भव्यदर्शना
रूपं दधाना विविधं भ्रमन्त्यमी ॥ १२ ॥

रहे हैं। और कुछ बादल गजराज के दाँत के समान विद्युत छटा धारण कर रहे हैं ॥ १० ॥

प्रियमूर्तिः—(देख कर उत्कण्ठा से)

मित्र ! देखो इधर सुन्दर एवं रमणीय दृश्य है।
आकाश रूपी रणाङ्गन में आए हुए दो मेघ रूपी मस्त हाथी, अपनी चतुराई से सूँडों द्वारा एक दूसरे पर प्रहार करते हुए जल रूपी मद धारा से पृथ्वी को सींच रहे हैं ॥ ११ ॥

कुछ बादल सिंह तुल्य डरावने, कई हरिणियों के जैसे मन हरने वाले, और कुछ घोड़ों की तरह सुन्दर लगने वाले, अनेक शकलों को धारण करते हुए घूम रहे हैं ॥ १२ ॥

आनन्दमूर्तिः—(सानन्दम्) सखे !

प्रभञ्जनो वारिदवारिशीतलो
वहन्सुगन्धं चलवल्लरीदलः ।
कदम्बवृक्षप्रसवोद्भवं मृदु—
र्मनांसि नो मोदयते शनैः शनैः ॥ १३ ॥

प्रियमूर्तिः—(विमृश्य–सोत्प्रासस्मितम्) सखे !

नवजलदसुनीरैः पूरिता निर्झरिण्यो—
विहितपुलिनभङ्गा उद्धतास्तास्तरुण्यः ।
नवजलधरकाले सङ्गमोत्कास्सरन्ति
जलनिधिपतिमेता दर्शितावर्तभङ्ग्यः ॥ १४ ॥

अपिच ।

अभिनवजलपूर्णाः पुष्करिण्यो विभान्ति
तटमतिसलिलान्युच्छालयन्त्यो लसन्त्यः ।
मृदुलकमलजालश्रीभिरत्यन्तमेताः
कृतबहलतरङ्गाः सारसाद्यैर्विहंगैः ॥ १५ ॥

आनन्दमूर्तिः—(आनन्द सहित) मित्र !
मेघ जल से शीतल, लताओं के पल्लवों को नचाने वाला, कदम्ब पुष्पों से सुगन्धित शीतल मन्द सुगन्ध यह वायु हमारे मन को प्रसन्न कर रहा है ॥१३

प्रियमूर्तिः—(विचार कर के अट्टहास्य सहित)
वर्षा कालीन नव जल से भरी ये नदियाँ, उन्मत्त अभिसारिकाओं के समान आचार रूपी तट मर्यादा को भङ्ग करती हुईं, भँवर रूपी नाभी की शोभा को दिखाती हुईं, और सङ्गम के लिए विह्वल हुईं, अपने समुद्र रूपी पति के पास जा रही है ॥ १४ ॥

और:—किनारों से पानी को उछालती हुईं, पुष्करणियाँ (तालाव) कैसी शोभित हो रही हैं, और उन तालवों के कमल दण्डों के बीच सारस कारण्डव आदि पक्षिगण कल्लोल कर रहे हैं ॥ १५ ॥

आनन्दमूर्तिः—(पार्श्वतो विलोक्य-हर्षं रूपयन्) सखे ! पश्य एते—

हरिततृणसमूहैर्मण्डिता इन्द्रगोपै—
यदुपरि विपिनान्ता नैकवर्णाम्बराणाम् ।
दधति हि सुषमां वा—मुङ्मृदङ्गस्य नादै—
स्ततरुचिरकलापैर्नृत्यते नीलकण्ठैः ॥ १६ ॥

अपि चेदानीम् ।

नृत्यन्मयूरैः कृतचारुनादं
गवेन्द्रगोवृन्दविराजितान्तम् ।
तृणावलीभी रमणीयदेशं
वनं सुरम्योपवनं विभाति ॥ १७ ॥

प्रियमूर्तिः—सखे ! पश्य—इमे—

किसलयालिगता जलबिन्दवो
रुचिरतिग्ममरीचिमरीचिभाः ।
विमलमौक्तिकजालकतुल्यतां
किमु न यन्ति नयन्ति जनं भ्रमम् ॥ १८ ॥

आनन्दमूर्तिः—(एक ओर देख कर हर्ष प्रकट करता हुआः)—

इन्द्रगोपों (बरसाती कीडे) से मण्डित घास वाली यह वन भूमि रङ्ग विरङ्गे गलीचों की शोभा धारण कर रही है, जिस पर बादल रूपी मृदङ्गों के साथ सुन्दर पंखो को फैला कर मोर नाच रहे हैं ॥ १६ ॥

और इस समयः—

नाचते हुए मोरों से शब्दायमान साढों और गौओं से सुशोभित, घासों से हरे भरे वन उपवन शोभित हो रहें हैं ॥ १७ ॥

प्रियमूर्तिः—मित्र ! देखिए

पत्तों पर पड़े हुए जल कण, सुन्दर सूर्य्य किरणों से चमकते हुए, विमल मोतियों की माला की शोभा धारण कर मनुष्य को भ्रम में नहीं डाल रहे हैं? १८

(परितो विलोक्य-पुनः सोल्लासम्)

हरितता वितता तरुसंततौ
हरितशाद्वलकन्दलकन्दलैः ।
नवपुरन्दरगोपविचित्रिता
गतवती धरणी रमणीयताम् ॥ १९ ॥

अपि चैतानि—

मुक्तावलीसन्निभतोयबिन्दु—
सन्दोहसंभूषितसुन्दराणि ।
अनोकहानामिह पल्लवानि
धौतानि धारावलिभिर्विभान्ति ॥ २० ॥

आनन्दमूर्तिः—(ऊर्ध्वमवलोक्य) सखे ! पश्य पश्य, एषा—

नीलाम्बुदानामवलीमधोधः
प्रहर्षिता चारुबलाकपङ्क्तिः ।
मन्दारमालारुचिमावहन्ती
समुत्पतन्ती मुदमातनोति ॥ २१ ॥

(चारों ओर देख कर उल्लास से)

लताओं और घासों की हरियाली से छाई हुई, तथा नए नए मखमल समान इन्द्रगोप नामक कीड़ों से विचित्रित यह भूमि सुन्दरता धारण कर रही है ।१९

और ये वृक्षों की पत्तियाँ

मोती-माला के समान जल कणों से विभूषित एवं जलधाराओं से प्रक्षालित होकर चमक रही हैं ॥ २० ॥

आनन्दमूर्तिः—(आकाश की ओर देख कर)

मित्र ! देखो देखो,

मेघ मालाओं के नीचे उड़ती हुई, अतएव पारिजातक-फूलों की माला की शोभा धारण करती हुई, सुन्दर सारसों की पंक्तियाँ आनन्द दे रही हैं ॥२१॥

प्रियमूर्तिः—(आखण्डलचापमण्डलं निभाल्य—संहर्षम्) सखे !

मनोरमामिन्द्रधनुष्यमेत—
नीलाम्बुदे विष्णुपदेऽम्बुदेषु ।
अनेकवर्णैः प्रविराजमानं—
पुष्णाति कान्तिं रुचिराम्बरस्य ॥ २२ ॥

आनन्दमूर्तिः—(सकौतुकम्) सखे !

आकाशवीथ्या परिहर्षयन्ती
गम्भीरनादं नदता समं सा ।
यंताम्बुगर्भेण बलाहकेन
विद्युल्लतेयं परिखेलतीव ॥ २३ ॥

प्रियमूर्तिः—(सस्मितम्) सखे ! इतोऽवलोकय—

सा सूत्रधारेण सहाम्बुदेन
तडिन्नटी पुष्कररङ्गभूम्याम् ।
समेत्य लास्यं कुरुते सहास्यं
द्राक् चञ्चला चञ्चललोचनेव ॥ २४ ॥

प्रियमूर्तिः—(इन्द्र धनुष देख कर आनन्द से)
नीले मेघ वाले आकाश मण्डल में, अनेक रङ्गों से सुशोभित यह इन्द्र धनुष आकाश की शोभा को बढ़ा रहा है ॥ २२ ॥

आनन्दमूर्तिः—(कुतूहल सहित) मित्र !
आकाशमार्ग से जाते हुए, गंभीर गर्जन करने वाले, जल से लवा लव भरे हुए बादल के साथ मानों यह बिजली आनन्द से खेल रही है ॥ २३ ॥

प्रियमूर्तिः—(थोड़ा हँस कर) भाई ! इधर देखो ।
आकाश रूपी रङ्ग भूमि में मेघ रूपी सूत्रधार के साथ, यह दामिनी रूपी नटी, हास्य सहित कटाक्षवाण को फेंकती हुई कामिनी की तरह नाच रही है ॥ २४ ॥

आनन्दमूर्तिः—(पर्वताभिमुखं निरीक्ष्य—सोत्प्रेक्षस्मितम्) सखे !

पश्य—

निशम्य नादं नदतोऽम्बुदस्य
सिंहोऽन्यसिंहागमशङ्कयासौ ।
निष्क्रम्य सज्जो गिरिकन्दरायाः
स्थितो बहिर्योद्धुमिवातिघोरम् ॥ २५ ॥

तदनु च ।

अयं मृगेन्द्रोऽन्यमृगेन्द्रशङ्की
नालोक्य तं तत्र नगेन्द्रभूमौ ।
अन्वेष्टुकामोऽखिलवन्यजन्तून्
संत्रासयन् भ्राम्यति वृद्धमन्युः ॥ २६ ॥

अत्रान्तर एव—

मा केसरिन् ! त्रासय वन्यजीवान्
क्रोधं स्वकीयं प्रतिसंहर त्वम् ।
इतीव तं केसरिणं ब्रुवन् सन्
नदन्नुदत्यम्बुधरोऽस्य शङ्काम् ॥ २७ ॥

आनन्दमूर्तिः—(पर्वत की ओर देख कर विचार पूर्वक हँस कर) भाई !
देखिए:—
यह सिंह:—गर्जते हुए बादल की गर्जना को सुन कर, दूसरे सिंह के आगमन की शंका से गिरि गुफा से बाहिर आकर भयंकर युद्ध करने के लिए मानों तैयार होकर खड़ा है ॥ २५ ॥
और इस के पश्चात्:—
उस पर्वतीय प्रदेश में यह मृगराज अन्य सिंह की शङ्का से व्याकुल, उसे वहाँ न पाकर, अन्वेषण की इच्छा से भयानक क्रोध धारण कर, जंगली जानवरों को संत्रस्त करता हुआ घूम रहा है ॥ २६ ॥
इतने में:—
हे सिंह ! जंगली जीवों को तू मत सता, अपना क्रोध तू रोक ले, गर्जता हुआ बादल मानों ऐसा उस सिंह से कहता हुआ उसकी शंका दूर कर रहा है २७

प्रियमूर्तिः—(परितो दूरं निरीक्ष्य) सखे ! परितो निरीक्षस्व—

रोलम्बविम्बालिविडम्बिभिस्ते
जम्वुद्रुमा जम्वुफलैः परीताः ।
स्फुटत्कदम्बप्रसवाः कदम्बा—
अपीच्यशोभां कलयन्ति तत्र ॥ २८ ॥

अपि च ।

रक्तैः पिशङ्गैर्हरितैश्च वर्णै—
र्युक्तैः फलानां स्तबकैर्विचित्रैः ।
शाखा विनम्राः सहकारवृक्ष—
स्याभान्ति सौगन्ध्ययुतास्सुरम्याः ॥ २९ ॥

आनन्दमूर्तिः—(सस्मितम्) सखे !

गवां कदम्बं क्वचिदागमालौ
गोपालबाला उपवेश्य भूमौ ।
ते वात्यया तत्र निपातितानि
जम्बून्यदन्ति प्रमुदा समूह्य ॥ ३० ॥

प्रियमूर्तिः—(चारों ओर दूर तक देख कर)

दोस्त ! चारों ओर अवलोकन करो । भ्रमरों के मण्डल के तुल्य, शोभा को धारण करने वाले, मनोहर फलों से वे जामुन के वृक्ष लदे हुए हैं । और खिले हुए कदम्व के फूल वाले वृक्ष सुन्दर शोभा धारण कर रहे हैं ॥२८॥

और इस ओरः—

लाल पीले हरे आदि विचित्र रङ्गों वाले फलों के गुच्छों से भरी हुई, सुगन्धि से युक्त आमों की डालियाँ झुकी हुई शोभित हो रही हैं ॥ २९ ॥

आनन्दमूर्तिः—(हास्य सहित) सखे !

कहीं गोप–बालक बालिकाएँ वृक्षों के नीचे गौओं को बिठा कर, हवा के झोकों से गिरे हुए जामुन को चुन कर आनन्द से खा रहे हैं ॥ ३० ॥

अपि च केचन।

समुद्धतताया जलपूरिताया
निपातयन्त्याश्च तटं तटिन्याः।
घोरं ध्वनन्त्यास्तटमेत्य पूरं
गोपालबालाः प्रविलोकयन्ति ॥ ३१ ॥

(नेपथ्ये)

क्वचिन्मृगाली चरति द्रुमेषु
सुताण्डवं ही कुरुते शिखण्डी।
शाखाभ्य एते कपयो व्रजन्ति
क्वचिद्द्रुमाणां फलनम्रशाखाः ॥ ३२ ॥

[उभौ सावधानमाकर्णयतः]

(पुनर्नेपथ्ये)

क्वचित् करिण्योऽत्र सरोवरेषु
मृणालदण्डानि सरोरुहाणाम्।
गजेन्द्रपङ्क्त्यै वितरन्त्य एताः
प्रदर्शयन्तीव प्रियानुरागम् ॥ ३३ ॥

और कुछ बालिकाएँ:—

जल से भरी हुई, किनारों को गिराती हुई, घोर ध्वनि करती हुई, उद्धत, नदी के किनारे आकर बाढ देख रही हैं ॥ ३१ ॥

नेपथ्य में:—

कहीं वृक्षों के झुण्ड में हरिणियों की टोलियाँ चर रही हैं, कहीं मोर नाच रहे हैं, और कहीं बन्दर फलों से झुकी हुई एक शाखा से दूसरी शाखा पर कूद रहे हैं ॥ ३२ ॥

(दोनों सावधानतापूर्वक सुनते हैं)

कहीं कहीं तालावों में हथिनियाँ कमलों के मृणाल दण्ड लेकर गजराज को खिलाती हुई मानों पति-प्रेम प्रकट कर रही हैं ॥ ३३ ॥

प्रियमूर्तिः—(आकर्ण्य-सहर्षम्) सखे ! तौ राजकुमारमन्त्रिकुमारौ चन्द्रकेतुवसुचन्द्रौ—इत एव—आगच्छत इति तर्कयामि, तदेहि, आवामपि तदभिमुखौ भूत्वा यथोचितमुपचराव: ।

[इति परिक्रम्य व्रजतः]

[ततः प्रविशति राजकुमारश्चन्द्रकेतुर्मन्त्रिपुत्रो वसुचन्द्रश्च]

वसुचन्द्रः—राजकुमार ! इतः काश्मीरराजधानीं प्रति कुलपतिः कदा प्रस्थातुकामः ?

चन्द्रकेतुः—यदाकाशमण्डलं विगताखण्डलचापमण्डनश्रीकं भवेत् ।

उभौ—(उपगम्य) आर्यौ ! नमो वाम् ।

चन्द्रकेतुवसुचन्द्रौ—वत्सौ ! चिरस्थ भूयास्ताम् (इति आलिङ्गतः)

प्रियमूर्तिः—(सुन कर आनन्द सहित) मित्र, राजकुमार चन्द्रकेतु और मंत्री-कुमार वसुचन्द्र इधर आ रहे हैं, ऐसा मालूम होता है, तो आओ हम उनके सम्मुख जाकर यथोचित सत्कार करें ।

(दोनों जाते हैं)

(राजकुमार चन्द्रकेतु और मंत्री-पुत्र वसुचन्द्र आते हैं)

वसुचन्द्रः—राजकुमार ! यहाँ से गुरुदेव काश्मीर की राजधानी को कब प्रस्थान करेंगे ?

चन्द्रकेतुः—जब आकाश मण्डल इन्द्र धनुष की शोभा से रहित हो जायगा ।

दोनोंः—(जाकर) भाईयो ! प्रणाम ।

चन्द्रकेतुः—
वसुचन्द्रः— } भाइयो ! दीर्घायु बनो ।

(दोनों आलिङ्गन करते हैं)

प्रियमूर्तिः—आर्य चन्द्रकेतो! चन्द्रवंशक्षितिपालसिंहेऽत्रभवति-सिंहासनमलङ्कुर्वति सति स्वमण्डलपालनचिन्ताकुलत्वात् कुतः पुनरित आगमनं संभवति।

आनन्दमूर्तिः—सखे प्रियमूर्ते! दूरे तावदागमनम्, स्मरणमप्यस्माकं—दुष्करम्।

चन्द्रकेतुः—वत्सौ! नैवं भवद्भ्यां स्वप्नेऽपि संभावनीयम्।

भद्रासनं समधिरोहतु वैष भद्रा—
वारुह्य सौधमधिविष्ठतु वैष तुङ्गम्।
आबाल्यकालसुहृदां हृदयङ्गमानां
किं विस्मरिष्यति पुनर्व्रतिमण्डलीनाम्॥ ३४॥

आनन्दमूर्तिः—एवमार्येण परमनुगृहीता वयमात्मानं धन्यं मन्यामहे।

प्रियमूर्तिः—भाई चन्द्रकेतु! चन्द्र वंश के राजसिंह आपके सिंहासन अलङ्कृत करने पर राज्य पालन चिन्ता में व्यग्र होने के कारण, आपका फिर यहाँ आना कैसे संभव है।

आनन्दमूर्तिः—भाई प्रियमूर्ति! आने की बात तो दूर रही, ये हम लोगों को स्मरण भी न करेंगे।

चन्द्रकेतुः—प्रिय बन्धुओ! आप लोग स्वप्न में भी ऐसा विचार न करें। चाहे मैं राज सिंहासन पर बैठूँ, या सुन्दर महलों में निवास करूँ, क्या अपने बाल्य कालीन अभिन्न हृदय प्यारे ब्रह्मचारी मित्रों को भुला सकता हूँ? ॥३४॥

आनन्दमूर्तिः—इस प्रकार पूज्य भाई से अत्यन्त अनुगृहीत हुए हम अपने जीवन को धन्य मानते हैं।

प्रियमूर्तिः—आर्य चन्द्रकेतो ! इत आगम्यताम्। मुहूर्तमिहानन्द-दायिन्यां नन्दनवनिकायामुपविशामः।

चन्द्रकेतुः—तथा ! (इति सर्वे परिक्रम्य नाट्येनोपविशन्ति)

प्रियमूर्तिः—(चन्द्रकलामालोक्य–सकौतुकम्) आर्य चन्द्रकेतो ! पश्य, पश्य।

निगूहते चन्द्रकला कदाचित्
कदाचिदाविर्भवतीयमेवम्।
चयान्तरे वारिदवारिदानां
नृणां विलासं कुरुते निकामम् ॥ ३५ ॥

चन्द्रकेतुः—(ऊर्ध्वमवलोक्य)

अम्भोदावलिभिः समग्रगगनं व्याप्तं दरीदृश्यते
व्यक्तं नैव यतो मृगाङ्ककिरणालीयं जरीजृम्भते।
ताराणां तु कथैव कापि स च यस्तारापतिर्नेक्ष्यते
वेगेनैव वहत्ययश्च शिशिरो वातो मनो मोदयन् ॥३६॥

प्रियमूर्तिः—भाई चन्द्रकेतु ! इधर आइए, थोडी देर आनन्ददायिनी इस नन्दनवाटिका में बैठें।

चन्द्रकेतुः—अच्छी बात। (सब जाकर बैठते हैं)

प्रियमूर्तिः—(चन्द्र कला को देख कर कौतुक सहित)

भाई चन्द्रकेतु ! देखिए:—

कभी तो यह चन्द्र कला भरे हुए काले बादलों में छिप जाती है, और कभी प्रकट हो जाती है। इस प्रकार मनुष्यों को आनन्ददायिनी हो रही है ॥३५॥

चन्द्रकेतुः—(ऊँचे देख कर)

मेघावलियों से समग्र गगन व्याप्त दिखाई दे रहा है, जिस से चन्द्रमा की किरणें ठीक ठीक नहीं छिटक रही हैं, ताराओं की तो बात ही क्या, तारा पति भी नहीं दीख रहा है, ऐसे समय में यह ठण्डी हवा मन को खिलाती हुई जोर से बह रही है ॥ ३६ ॥

प्रियमूर्तिः—(साश्चर्यचकितं परितो वीक्ष्य) चन्द्रकेतुं प्रति—आर्य ! पश्य पश्य-इयमनेन तुषारासारवर्षिणी मधुरगम्भीररवनादिनी चञ्चच्चामीकरनिभचमत्कुर्वच्चञ्चला बलाहकलेखा पौरस्त्येन मरुता परितो विकीर्यते। तदेतु, भवान् आश्रमं प्रति प्रतिष्ठामहे ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

[समाप्तोऽयं चतुर्थोऽङ्कः]

प्रियमूर्तिः—(आश्चर्य्य सहित चारों ओर देख कर चन्द्रकेतु से) भाई ! देखिए:—

सूक्ष्म जल कणों को बरसाने वाली, मधुर और गंभीर गर्जती हुई, सोने के तुल्य बिजली से देदीप्यमान यह मेघमाला, पूर्वीय पवन से सञ्चालित चारों ओर फैल रही है, तो आइए हम लोग आश्रम को चलें ।

(सब जाते हैं)

चतुर्थोऽङ्कः समाप्त.
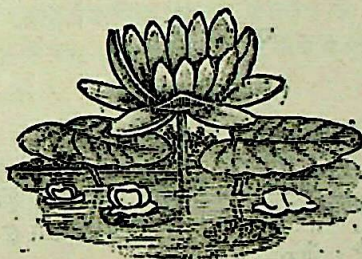
पञ्चमोऽङ्कः ।

[ततः प्रविशति ब्रह्मचारिवटुः]

वटुः—अहो प्राभातिकं रामणीयकम् । तथाहि—

क्वचिदम्बरमिन्दुकलारुचिरं
द्विजमण्डलमण्डलितं ललितम् ।
क्वचिदम्बरमम्बरहंसकरै-
ररुणैररुणं रमणीयमिदम् ॥ १ ॥

अपि च ।

विकसितं दरमम्बुरुहं ततो
मुकुलितार्द्धमियं कुमुदावली ।
गमितमेकमिदं विधिनोदयं
विलयमन्यदहो लसितं विधेः ॥ २ ॥

पञ्चम अंक ।

(ब्रह्मचारी आता है)

ब्रह्मचारीः—अहा ! प्रातः कालीन रमणीयता ।

झिल मिल करते हुए तारा गण से शोभित चन्द्रकला से कहीं आकाश सुन्दर प्रतीत हो रहा है, और कहीं तो लाल सूर्य्य किरणों से आकाश लालिमा धारण कर रहा है । औरः—॥ १ ॥

एक ओर अधखिला कमल, दूसरी ओर अर्धमुद्रित कुमुदिनी; विधाता ने एक को उदित किया है और दूसरे को अस्त । अहा ! परमेश्वरीय लीला ॥२॥

[प्रतीच्यां मन्दकिरणजालं तुषारकिरणं वीक्ष्य सतर्कम्]

गिरिजागुरुमस्तके पदं
विनिधाय द्विजराडयं यतः ।
गगनं गतवान् मदान्वितः
पततिं क्षीणपदोऽधुनोच्चकैः ॥ ३ ॥

(परितो विलोक्य)

शशकलङ्ककला रुचिहीनतां
विकलतामुडुमण्डलमागतम् ।
कलकलं खगवृन्दमितोऽरुणो
गगनमातनुतेऽरुणरञ्जितम् ॥ ४ ॥

अपि च—

वहति शिशिरवायुर्मञ्जरीपुञ्जवाही
कुसुमिततरुमाला नर्तयन् वल्लरीभिः ।
पथिकजनमनांस्युत्साहयन् कल्यकाले
सरसिजदलवृन्दं धूनयन् शारदोऽयम् ॥ ५ ॥

(पश्चिम दिशा में चन्द्र को फीका देख कर)

यह नक्षत्र नाथ पार्वतीजीके पिता हिमालय के मस्तक पर पैर रख अभिमानी वन कर, आकाश में चढ़ा था, इस लिए अव ऊँचे से नीचे गिर कर फीका हो रहा है ॥ ३ ॥

(चारों ओर देख कर)

चन्द्रकला कान्ति हीन हो गयी है, इस लिए तारा मण्डल व्याकुल (क्षीण) हो रहा है, उधर सूर्य्य आकाश को रक्तिमासे रञ्जित कर रहा है, जिस से पक्षीगण गा रहे हैं । औरः—॥ ४ ॥

प्रभात में पुष्प मञ्जरी से सुगन्धित, लताओं सहित खिले हुए वृक्षों को नचाता हुआ, पथिकों के मनों को उत्साहित करने वाला, एवं कमल दलों को कँपाने वाला, शरद् कालीन यह शीतल वायु चल रहा है ॥ ५ ॥

(ऐन्द्रीं हरितं निरीक्ष्य—सहर्षस्मितम्) कथमिदमुदयगिरिशिखरशिरःशेखरीभूतं तरलतरविकिरदरुणकिरणनिकरारुणित—पुरन्दरदिगन्तरं तरङ्गितात्मव्यापारकरणाखिलजगन्निकरम्, अम्बराम्बुराशिचरैककलहंसं तरणिबिम्बमधुनापि गगनसागरतरलतरङ्गभङ्गावलीपु सकुतूहलां केलिं कलयितुं नोत्सुकम्।

(नेपथ्ये।)

जीमूतानां मधुरसुभगं गर्जितं तत्प्रशान्तं
　　विद्युन्मालाललितलसितं प्राप्तमस्तं समस्तम्।
नीपालीनां कुसुमसुरभिः शीकरासारवाही
　　शान्तो वातः शरदियमतो व्यक्तलिङ्गा समन्तात् ॥६॥

वटुः—(आकर्ण्य) अये, प्रियमित्रदेशमित्रौ शारदीं शोभामनुशीलयन्तावित एवाभिवर्तेते। तदद्य काश्मीरयात्रार्थमुद्यतस्य महा-

---

(पूर्वदिशा को देख कर हास्य सहित हर्ष से)

उदयाचल के शिखर रूपी मस्तक का अलङ्कार, फैलते हुए विशाल लाल किरण समूहों से पूर्वदिशा को लाल बनाने वाला, अपने अपने दैनिक कार्य्यों में प्राणियों को प्रेरित करने वाला आकाश रूपी समुद्रका राजहंस यह सूर्य्य अब भी गगन सागर की चंचल तरङ्गों में कौतुकमयी लीला करने के लिए उद्यत नहीं है।

(पर्दे में)

बादलों का वह मधुर गर्जन शान्त हो चुका, दामिनी (बिजली) की अब वह चमक दमक नहीं रही, कदम्ब वृक्षों के फूलों की सुगन्धि से युक्त जलकण वाली वह शीतल हवा भी नहीं है, इस लिए चारों ओर अब शरद् ऋतु के चिह्न दीख रहे हैं ॥ ६ ॥

ब्रह्मचारीः—(सुनकर)

अहा! प्रियमित्र और देशमित्र शरद्कालीन शोभा देखते हुए इधर ही आ रहे

नुभावस्य गुरुचरणस्य—आर्यचन्द्रकेतुप्रमुखस्य च कृते स्रग्गु-म्फनाय कुसुमानि—अवचेतुं नन्दनवाटिकां प्रति प्रस्थितोऽस्मि । तत्त्वरितं व्रजामि । (इति निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशति यथोक्तव्यापारं ब्रह्मचारिवटुद्वयम्)

प्रियमित्रः—(उपर्य्यवलोक्य–सहर्षम्) सखे देशमित्र ! पश्य

जलनिधिहृतवारां दानपुण्येन नैजं
हरणजनितपङ्कं नूनमेते विधूय ।
रजतशकलतुल्यं विग्रहं संदधाना
धवलजलदखण्डा मण्डयन्त्यन्तरिक्षम् ॥ ७ ॥

(विहस्य पुनः)

प्रखरकिरणमाली यन्त्रितः पाशरूपै-
र्विकलिततनुरेष प्रावृषा प्रावृषेण्यैः ।
स सकरुणमिदानीं मोचितः पद्मिनीन्द्रो
नभसि नु शरदालं लज्जते मन्दतेजाः ॥ ८ ॥

हैं, तो काश्मीर यात्रा के लिए तैयार हुए पूजनीय गुरुदेव एवं भाई चन्द्रकेतु आदि के लिए माला निर्माणार्थ फूलों को तोड़ने के लिए नन्दन वाटिका की ओर जाता हूँ, अच्छा तो जल्दी चलता हूँ ।

(जाता है)

(शारदीय शोभा निहारते हुए दो ब्रह्मचारियों का प्रवेश)

प्रियमित्रः—(आकाश की ओर देख कर हर्ष सहित) भाई देशमित्र ! देखो, समुद्र से लाए हुए जल के दान रूप पुण्य से, मानों अपने हरण से उत्पन्न हुए पाप को नष्ट कर, चाँदी के टुकड़े के समान शरीर धारी, ये श्वेत बादलों के खण्ड आकाश को मण्डित कर रहे हैं ॥ ७ ॥

(हँसकर फिर) वर्षा रूपी देवी से बादल रूपी पाशों द्वारा जकड़ने के कारण, व्याकुलित यह सूर्य्य, शरद् रूपी देवी से करुणा पूर्वक इस समय छुड़ाया जाने के कारण, मन्द तेज होकर लज्जित हो रहा है । और:—॥ ८ ॥

अपि च ।

नक्षत्रताराग्रहमण्डलानि
कादम्बिनीपङ्कविकान्तिवन्ति ।
प्रक्षाल्य मन्ये शरदा कृतानि
प्रसन्नलक्ष्मीरुचिराण्यमूनि ॥ ९ ॥

देशमित्रः—सखे प्रियमित्र ! पश्य

पतद्वलक्षच्छदपत्रिणां गणै-
र्दिवं सितां स्मेरसरोरुहैर्भुवम् ।
सरित्सरोऽम्बून्यमलानि तन्वती
शरत् प्रसन्नेव विराजते पुरः ॥ १० ॥

तथाहि ।

अपेतमाखण्डलचापमण्डल-
श्रियाम्बरं नीलमहाम्बुवाहिना ।
स्फुटाननाभिर्विहगोदितोदितं
दिगङ्गनाभिर्नु निरीक्ष्यते मिथः ॥ ११ ॥

मेघ माला रूपी कीचड़ से मलिन बने हुए नक्षत्र तारागण एवं ग्रहों को मानों शरद् ऋतु ने धोकर स्वच्छ एवं सुन्दर बना दिया है ॥ ९ ॥

देशमित्रः—भाई प्रियमित्र ! देखो तो

उड़ते हुए श्वेत पंख वाले हंसों की मण्डलियों से आकाश को, खिलते हुए कमलों से पृथ्वी को, तथा नदियों एवं सरोवरों को श्वेत करती हुई मानों यह शरद् ऋतु हँस रही है ॥ १० ॥

तथाः—इन्द्र धनुष के मण्डल की शोभा वाले, नीले नीले बादलों से आकाश-रहित हो गया है, अतएव दिशा रूपी सुन्दरीयाँ पर्दा हट जाने से, पक्षियों के कल कल कूजन द्वारा मानों परस्पर बात चीत कर रही है ॥ ११ ॥

अपि च ।

विनिर्मला लोलतरङ्गमालिनी
सितारविन्दावलिदामशालिनी ।
इयं कृशाऽऽवर्तमनोरमा पतिं
प्रयाति मन्दं कलहंसनादिनी ॥ १२ ॥

प्रियमित्रः—(सकौतुकस्मितम् ।) सखे !

विकस्वराम्भोजविलोललोचना
विकासिकाशालिदुकूलशालिनी ।
प्रफुल्लबाणासनकाननान्तरे
शरन्नटी नृत्यति हंसशिञ्जिनी ॥ १३ ॥

देशमित्रः—सखे ! पश्य सम्प्रति—

निरम्बुदं व्योम विनिर्मलं जलं
प्रभञ्जनो मानसरञ्जनो मृदुः ।
मनोऽभिरामाऽमलचन्द्रचन्द्रिका
न किं प्रशंसन्ति शरद्वरश्रियम् ॥ १४ ॥

औरः—चंचल तरङ्गोंरूपी त्रिवली वाली, नाभीसमान सुन्दर भँवर वाली, श्वेत कमल रूपी मालासे शोभित कलहंस रूपी नूपुर को बजाती हुई, यह कृशाङ्गी एवं स्वच्छ हृदया नदी रूपी नायिका धीरे धीरे समुद्र रूपी पति के पास जा रही है ॥ १२ ॥

प्रियमित्रः—(आश्चर्य्यसहित मुस्करा कर) मित्र !
विकसित कमल रूपी चञ्चल नेत्रों वाली, खिली हुई कास पुष्परूपी साड़ी से सज्जित, हंस रूपी नूपुर की मधुर ध्वनि वाली, शरद् ऋतु रूपी नटी खिले हुए सरकण्डे एवं आसन नामक वृक्षों के वनों में नाच रही है ॥ १३ ॥

देशमित्रः—मित्र, अच्छा अब देखिए ।
बादल रहित आकाश, निर्मल जल, मनोमोहक शीतल मन्द सुगन्ध वायु, स्वच्छ चन्द्रमा की चाँदनी, क्या ये सब चीजें शरद् ऋतु की शोभा की वृद्धि नहीं कर रहीं हैं ॥ १४ ॥

प्रियमित्र—सखे देशमित्र ! पश्य

नभोऽम्बुदैर्हीनमिदं निरीक्ष्य ते
शिखण्डिनो मुक्तकलापमण्डनाः ।
विवर्जिता हंससुनिस्वनैर्गता
विवर्णतां मौनमिव स्थिता इमे ॥ १५ ॥

अपि च ।

अपेतपङ्कामगजेन्द्रमण्डितां
गवेन्द्रगोवृन्दविराजिनन्दिताम् ।
पतन्ति हंसाः कमलावतंसिनीं
तरङ्गिणीं क्रौञ्चनिनादिनीं मुदा ॥ १६ ॥

देशमित्रः—(विमृश्य-सोल्लासम्) सखे ! अस्यां शरदि—

लसद्ग्रहोन्मीलितचारुलोचनां
निशां निशावल्लभसुन्दराननाम् ।
सितांशुमालाम्बरवेल्लिताङ्गकां
मनो मुदं वीक्ष्य दरीधरीति नुः ॥ १७ ॥

प्रियमित्रः—भाई देशमित्र, देखो !—

आकाश को बादलों से रहित देख कर ये मयूर गण पंख रूपी अलङ्कार को त्याग कर हंसों के शब्दों द्वारा मानों धमकाए हुए निस्तेज होकर मौन धारण कर रहे हैं ॥ १५ ॥

हाथियों, साढों एवं अन्य पशु समूह से मण्डित, कमलों से अलङ्कृत, सारसादि पक्षियों से गुञ्जित, निर्मल निर्झरिणी के नीर पर हर्ष से हंस उड़ कर आ रहे हैं ॥ १६ ॥

देशमित्रः—(विचार कर आनन्द सहित) मित्र !

इस शरद् काल में:—

चमकते हुए ग्रह रूपी खुली हुई सुन्दर आँखों वाली, चन्द्र किरण रूपी श्वेत चादरवाली, सुन्दर चन्द्रमुखी निशा (रात्रि) कामिनी को देख कर मनुष्यों का मन प्रमुदित हो जाता है ॥ १७ ॥

प्रियमित्रः—सखे !

वसुन्धरां वारिमुचां जलैरयं—
स तर्पयित्वा विपुलं पुरन्दरः ।
प्रभूतसस्यां वरशाद्वलान्वितां
विधाय शान्तो विरतस्स्वकर्मणः ॥ १८ ॥

देशमित्रः—(साश्चर्यस्मितम्) सखे !

नदीनदानां गिरिनिर्झराणां
वारां घनानामिव वारणानाम् ।
सुवानराणाञ्च मदोद्धताना-
मौद्धत्यमेषां शरदा निरस्तम् ॥ १९ ॥

(विहस्य)

कादम्बिनीनाशवियोगखिन्नं
कदम्बकं चन्द्रकिणां वनेषु ।
विहाय बर्हाणि विनश्वराणि
धत्ते समाधिं नु विरक्तचित्तम् ॥ २० ॥

प्रियमित्रः—भाई, यह इन्द्र देव जलधरों (बादलों) के जल से वसुमती को खूब सींचकर, उत्तम तृण धान्यादि मण्डित बना, अपने काम से निवृत्त हो गया ॥ १८ ॥

देशमित्रः—(आश्चर्य्य सहित मुस्करा कर) मित्र,

नदियों, नदों, झरनों और मदमत्त हाथी तुल्य बादलों की तथा चंचल वन्दरों की चंचलता को शरद् ऋतु ने शांत कर दिया ॥ १९ ॥

(हँस कर)

मेघ मालाओं के नाश जन्य वियोग से खिन्न मयूरों का मण्डल नाशवान् पिच्छों को छोड़ विरक्त सा होकर समाधि धारण कर रहा है ॥ २० ॥

प्रियमित्रः—(सस्मितम्) सखे ! पश्य पश्य—

शिखण्डिनीं सन्निकटागतां तां
शिखण्डिनो नो दधतेऽनुरागम् ।
विनिस्स्पृहास्ते विषयेषु दोषान्
ज्ञात्वा न किं दोषविदो विरक्ताः ॥ २१ ॥

देशमित्रः—(उत्तरस्यां दिशि दर्शयन्) सखे ! पश्य—इमानि

शृङ्गाणि चारूणि महागिरीणां
धौतानि पूर्वं जलदावलीभिः ।
भास्वन्मणीनां रमणीयभाभि-
र्हसन्ति संभान्ति दिनेन्द्रकान्तिम् ॥ २२ ॥

प्रियमित्रः—सखे ! पश्य—

अतनुतनुवरश्रीश्चन्द्रवच्छुक्लदेहो-
रुचिरगुरुककुद्मान् कूलकुञ्जे स्रवन्त्याः ।
इह नदति गवेन्द्रो धेनुवृन्दे विभिन्दन्
पुलिनमतिमदान्धस्तुङ्गशृङ्गद्वयेन ॥ २३ ॥

प्रियमित्रः—(मुस्कराते हुए) मित्र, देखिए:—
पास आयी हुई मोरनी को देख कर भी मोर प्रेमासक्त नहीं हो रहे हैं, दोषज्ञ विद्वान् गण क्या विषयों के दोषों को जानकर पुनः उसी में फँस सकते हैं ? ॥ २१ ॥

देशमित्रः—(उत्तर की ओर दिखा कर) मित्र, देखिए:—
मेघमाला से पहले धोए गए महापर्वतों के ये सुन्दर शिखर, चमकते हुए रत्नों की रमणीय कान्ति से मानों सूर्य्य की शोभा को हँस रहे हैं ॥ २२ ॥

प्रियमित्रः—और यह अत्यन्त विशाल शरीर धारी, चन्द्र समान शुक्ल वर्ण वाला, सुन्दर मोटे कन्धे से शोभित अतिमदान्ध, यह वृषभ गौ समूह में नदी किनारे दोनों सींगों से किनारे को ढाहता हुआ डकार रहा है ॥ २३ ॥

देशमित्रः—सखे ! सम्प्रति—

आशास्सुहासास्सरितस्सुकाशा
राजा निजारातिनिबर्हणाशः ।
सप्तच्छदामोदसुगन्धिताशाः
प्रवान्ति वाता मृदुमन्दशीताः ॥ २४ ॥

अपि च ।

इयं वनान्ते कलहंसमाला
सितारविन्दोत्कररेणुरम्या ।
कलं क्वणन्ती मधुरै रवैस्सा
शरच्छ्रियं पुष्यति संभृताङ्गा ॥ २५ ॥

(समन्ततोऽवलोक्य—पुनः सहर्षम्) सखे !

क्षेत्राणि सस्यपरिणाममनोरमाणि
कूलानि काशधवलानि महानदीनाम् ।
जम्बालहीनधरणी धरणीधराणां
शृङ्गाणि फुल्लशरपुष्पविमण्डितानि ॥ २६ ॥

देशमित्रः—मित्र ! अबः—

दिशाएँ हँस रहीं हैं, नदियाँ काश पुष्प से शोभित हैं, नृपति गण अपने शत्रुको मर्दन के लिए उद्यत हो रहे हैं, और कोमल मन्द सुगन्ध शीतल समीर वह रहा है ॥ २४ ॥

और:—श्वेत कमल माला के पराग परिमल से शोभित, जंगलों में हृष्ट पुष्ट शरीर वाली, ये राजहंसों की पंक्तियाँ मधुर ध्वनि करती हुई शरद् शोभा की वृद्धि कर रही हैं ॥ २५ ॥

(चारों ओर देख कर पुनः आनन्द से)

मित्र !

पके हुए धान्य से खेत सुन्दर दीख रहे हैं, बड़ी बड़ी नदियों के किनारे काश पुष्प से श्वेत हो गए हैं, पृथ्वी कीचड़ रहित हो गयी है, और पर्वतों के शिखर खिले हुए शरकण्डों के फूलों से सुसज्जित हैं ॥ २६ ॥

प्रियमित्रः—(सकौतुकहासम्) सखे ! पश्य कौतुकम् ।

एणीकुलं कलमगोपवधूप्रगीतं
गीतं निशम्य मधुरं श्रुतिसौख्यदायि ।
सस्वादनाय गतमप्यनिवारितं तन्
नात्तुं नितान्तमभिवाञ्छति धान्यगुच्छम् ॥ २७ ॥

(उपरि विलोक्य–पुनः) सखे ! पश्य—

कलमकोमलपीतशिखा दधन्
नवशिरीषसुपुष्पमनोहरम् ।
रुचिररक्तमुखं हरिदङ्गकं
लसति कीरकुलं पतदम्बरे ॥ २८ ॥

देशमित्रः—सखे !

चकोरकारण्डवचक्रवाक-
श्रीहंसराजालिविशालिनीनाम् ।
स्रोतस्विनीनां सरदच्छवारां
श्रीः कापि काशाम्बरवाहिनीनाम् ॥ २९ ॥

प्रियमित्रः—मित्र, मजे की वात तो देखो:—
अनाज खाने के लिए गया हुआ हरिणियों का झुण्ड धान की रखवाली करने वाली गोपवालिकाओं के मधुर कर्ण–प्रिय गायन को सुन कर न हाँके जाने पर भी धान्य गुच्छ नहीं खाना चाहता ॥ २७ ॥
(ऊपर की ओर देख कर) मित्र,
नए धान्यों के पीले वालों को मुख में धारण करता हुआ, नए शिरीष पुष्पके तुल्य मनोहर, सुन्दर लाल चोचों वाला, हरे रंग का यह तोतेका मण्डल आकाश में उड़ रहा है ॥ २८ ॥
देशमित्रः—दोस्त ! चकोर, चकवा, कारण्डव एवं हंसोंकी पंक्तियों से शोभित, शुभ्र पुष्परूपी वस्त्रों को पहनने वाली वहते हुए स्वच्छ जलमण्डित नदियों की तो अवर्णनीय शोभा है ॥ २९ ॥

अपि च!

सरोवरे स्मेरसरोजसुन्दरे
प्रसन्ननीरे कलहंसमन्दिरे।
मुदेन्दिराऽऽस्ते धृतपाणिवीणिका
रणन्मिलिन्दोदितचारुगीतिका ॥ ३० ॥

प्रियमित्रः—(विचिन्त्य–साकूतम्) सखे देशमित्र! अपि जानासि—कदा आर्यचन्द्रकेतो राज्याभिषेको भविष्यति—इति ?

देशमित्रः—कथन्न! भगवता कुलपतिना साकं संभाषणं कुर्वत—आर्यचन्द्रकेतोर्मुखादेव मया श्रुतं यद्—व्यतीतायामस्यां प्रावृषि तातो मामभिषेक्तुं वाञ्छति—इति।

प्रियमित्रः—तत् कदा स प्रस्थातुमिच्छति ?

देशमित्रः—आर्येण परश्वो गुरुचरणानामग्रे कथितं यद्—द्वित्रदिनाभ्यन्तर एव तातस्य प्रियवयस्यश्चन्द्रवर्णोऽस्मान्नेतुं—विमानमादायेह समायास्यति—इति—

और:—विकसित कमलों से सुन्दर, निर्मल नीर शाली, राजहंसों के निवास स्थान रूप इस सरोवर में लक्ष्मी देवी आनन्द से हाथ में वीणा धारण कर, गूँजते हुए भ्रमरों के मिस से मानों मधुर गान गा रही है ॥ ३० ॥

प्रियमित्रः—(विचार कर) देशमित्र,
जानते हो, भाई चन्द्रकेतु का राज्याभिषेक कब होगा ?

देशमित्रः—क्यों नहीं, भगवान् कुलपति जी के साथ बात चीत करते हुए भाई चन्द्रकेतु के ही मुख से मैं ने सुना था कि वर्षा काल के बीतने पर पिताजी मेरा राज्याभिषेक करना चाहते हैं।

प्रियमित्रः—तो वे कब प्रस्थान करेंगे ?

देशमित्रः—परसों ही भाई ने गुरुजी से कहा था कि दो तीन दिन के भीतर ही पिता जी के प्रियमित्र चन्द्रवर्ण जी हमें लेने के लिए विमान द्वारा यहीं आवेंगे।

(प्रविश्य)

बटुः—(साश्चर्यम्) सखे प्रियमित्र ! पश्य पश्य । कोऽयमायाति व्योमयानेन विमानाधिरूढः ?

प्रियमित्रः—(विलोक्य—देशमित्रं प्रति—सतर्कम्) सखे ! नूनं तेनैव महाराजस्य प्रियवयस्येन चन्द्रवर्णेन भाव्यम् ।

देशमित्रः—आम्, सखे ! आम् । तेनैव भवितव्यम् ।

प्रियमित्रः—तदेहि, आश्रमं यावः ।

[इति सर्वे आश्रमाभिमुखं परिक्रामन्ति]

देशमित्रः—(पुरो विलोक्य—सहर्षम्) सखे प्रियमित्र ! पश्य पश्य । केनचिद् बटुना सूचितां विमानोपयानवार्तां निशम्य सरभसमार्यचन्द्रकेतुर्मन्त्रिपुत्रो वसुचन्द्रोऽन्ये च ब्रह्मचारिबटव इत एव यज्ञवेदिकायामाचार्याभ्यर्णमागच्छन्ति । तदेहि, यज्ञवाटमनुसृत्य गच्छामः ।

(इति निष्क्रान्ताः)

(प्रवेश कर के)

ब्रह्मचारीः—(आश्चर्य्य सहित) प्रियमित्रजी देखिए देखिए:—
आकाश मार्ग से विमान पर बैठा कौन आ रहा है ?

प्रियमित्रः—(देख कर देशमित्र से) भाई, निश्चित वेही महाराज के प्रियमित्र श्रीचन्द्रवर्ण होंगे ।

देशमित्रः—हाँ हाँ वही होंगे ।

प्रियमित्रः—अच्छा तो आओ आश्रम को ही चलें ।

(सब आश्रम की ओर जाते हैं)

देशमित्रः—(आगे देख कर आनन्द से) प्रियमित्र, देखो:—
किसी ब्रह्मचारी से विमान आने की बात सुन कर जल्दी से भाई चन्द्रकेतु मंत्री पुत्र वसुचन्द्र एवं अन्य ब्रह्मचारी गण यज्ञ वेदी पर बैठे हुए श्री गुरु जी के पास ही आ रहे हैं, तो आओ यज्ञ शाला की ओर चलें ।

(सब जाते हैं)

[ततः प्रविशतो यथोक्तव्यापारौ चन्द्रकेतुवसुचन्द्रौ अन्ये च ब्रह्मचारिणः]

चन्द्रकेतुः—(विमानं विलोक्य—समोदम्) सखे वसुचन्द्र ! पश्य पश्य–तदिदम्–

मधुरमुखरिताभिः किङ्किणीभिः स्वयानं
लसदुपरि विशालैः सूचयच्चन्द्रशालैः ।
अवतरति मणीनां कान्तिभिर्भासमानं
पवनमृदुतरङ्गैर्दोल्यमानं विमानम् ॥ ३१ ॥

तदेहि, किञ्चिदग्रे गत्वा तिष्ठावः । (इति परिक्रम्य तिष्ठतः)

[ततः प्रविशति विमानाधिरूढश्चन्द्रवर्णः]

चन्द्रवर्णः—(अधोऽवलोक्य–सहर्षोल्लासम्) अये ! कथं सैवेयमनुमन्दाकिनीतीरं रमणीयानेकानोकहनिवहपरिवलयिता पावना मन्दानिलान्दोलितवल्लिरुचिराश्रमा गुरुकुलभूमिः प्रदीप्यते । तथाहि ।

(चन्द्रकेतु, वसुचन्द्र, और सब ब्रह्मचारी आते हैं)

चन्द्रकेतुः—(विमान देख कर आनन्द से) भाई वसुचन्द्र! देखो, मधुर किंकिणियों से अपने आगमन की सूचना देता हुआ, विशाल चन्द्रशालाओंसे शोभित, रत्नों की कान्तिसे देदीप्यमान, और हवा की झोंकों से हिलता डुलता यह विमान उतर रहा है ॥ ३१ ॥
तो आओ कुछ आगे जाकर ठहरें। (सब जाते हैं)

(विमान में बैठे चन्द्रवर्ण का प्रवेश)

चन्द्रवर्णः—(नीचे देख कर हर्ष से)
अहा! वही यह गंगा किनारे सुन्दर विविध वृक्ष पंक्तियों से वेष्टित, मन्द मन्द समीर से सञ्चालित, लताओं से रुचिर आश्रमों वाली, पवित्र गुरुकुल भूमि दिखाई पड़ रही है।

क्वचिदाश्रममन्दिरावली
कदलीस्तम्भदलैर्विमण्डिता ।
क्वचिदङ्गनयज्ञवेदिका
बटुवृन्दारकवृन्दवन्दिता ॥ ३२ ॥

अपि च ।

समुच्चलच्चन्द्रकिचक्रसुन्दरा
मृगाङ्गनालङ्कृतरम्यवेदिका ।
चलन्मरुल्लोलतरङ्गदीर्घिका
विभाति सा नन्दनवाटिका पुरः ॥ ३३ ॥

(पुरोऽवलोक्य–सहर्षम्) कथं ताविमौ राजकुमारमन्त्रिकुमारौ मां प्रतीक्षमाणौ तिष्ठतः । तदेष विमानं स्तम्भयामि ।

[इति विमानाधिदेवतामिङ्गितेन स्तम्भयित्वा—अवतरणं नाटयति]

(ततः प्रविशतश्चन्द्रकेतुवसुचन्द्रौ)

चन्द्रकेतुः—(चन्द्रवर्णं निर्वर्ण्य–सहर्षम्) अये ! सोऽयं तातस्य प्रिय-

---

कहीं तो केलों के पत्तों से सजे हुए आश्रमों के भवन हैं, कहीं ब्रह्मचारी वरों से सेवित यज्ञ वेदिकाएँ हैं । औरः—॥ ३२ ॥

कहीं यह सामने नाचते हुए मयूर मण्डल से मण्डित, और कहीं हरिणियों से अलङ्कृत सुन्दर चबूतरे वाली, एवं मन्दमन्द पवन आन्दोलित तरङ्गयुत वावली वाली वाटिका है ॥ ३३ ॥

(आगे देख कर हर्ष से)

अहा ! यही वे राजकुमार और मंत्री पुत्र मेरी प्रतीक्षा में खड़े हैं, तो विमान खड़ा करूँ ।

(विमान को कल से रोक कर नीचे उतारता है)

(चन्द्रकेतु और वसुचन्द्र आते हैं)

चन्द्रकेतुः—(चन्द्रवर्ण को देख कर हर्ष सहित) अहा ! यह वे पिताजी के

वयस्यो मामीक्षमाण इत एवाभिवर्तते । तदुपगम्य—एनं प्रणमामि । (इति उपसृत्य प्रणमति)

चन्द्रवर्णः—(सहर्षरोमाञ्चमालिङ्ग्य) वत्स चन्द्रकेतो ! दीर्घायुर्भूत्वा चिरं राज्यमुपभुङ्क्ष्व ।

वसुचन्द्रः—(उपसृत्य) आर्य ! प्रणमामि ।

चन्द्रवर्णः—(आलिङ्ग्य) वत्स वसुचन्द्र ! त्वमस्य चन्द्रकेतोः स्नेहभाजनं भव ।

चन्द्रकेतुः—आर्य ! अयं भगवान् कुलपतिर्भवन्तं प्रतिपालयन्नमुष्मिन् यज्ञमण्डपे समुपविष्टोऽस्ति । तदागम्यताम्, तदन्तिकं गच्छामः । (इति परिक्रम्य गच्छन्ति)

[ततः प्रविशति वटुभिः सहोपविष्टो भगवान् कुलपतिः]

कुलपतिः—वत्स प्रियमित्र ! यावद् वयं राजधानीतो न निवर्तामहे तावत्त्वमस्मत्प्रतिनिधिर्भूत्वा सकलमाश्रमोचितकार्यं निपुणं सम्पादय ।

प्रियमित्र मेरी ओर देखते हुए इधरही आ रहे हैं, तो मैं पास जाकर प्रणाम करूँ। (प्रणाम करता है)

चन्द्रवर्णः—(आनन्द पूर्वक आलिङ्गन कर के)
पुत्र चन्द्रकेतो ! दीर्घायु होकर चिरकाल तक राज्योपभोग करो ।

वसुचन्द्रः—(पास आकर) आर्य्य, प्रणाम करता हूँ।

चन्द्रवर्णः—(आलिङ्गन कर) पुत्र वसुचन्द्र, तुम इस चन्द्रकेतु का प्रेम पात्र बनो !

चन्द्रकेतुः—आर्य्य ! भगवान् कुलपति आप की प्रतीक्षा करते हुए यज्ञ शाला पर बैठे हैं, तो आइए उनके पास चलें ।

(जाते हैं)

(ब्रह्मचारियों के साथ बैठे कुलपतिजी का प्रवेश)

कुलपतिः—वत्स प्रियमित्र, जब तक मैं राजधानी से न लौटूँ तब तक मेरा स्थानापन्न होकर आश्रम का कार्य्य सावधानी से सम्पादन करना ।

प्रियमित्रः—यदाज्ञापयति भगवान् ।

(प्रविश्य)

चन्द्रकेतुः—भगवन्! स एष तातस्य प्रियवयस्यश्चन्द्रवर्णो भगवन्तमभिवादयते ।

कुलपतिः—(बटुभिः सममभ्युत्थाय) स्वस्ति भवते महाराजप्रियसुहृदे । इदमास्तरणम्, उपविशतु भवान् ।

(इति सर्वे यथोचितमुपविशन्ति)

कुलपतिः—महाराजैकप्रणयिन्! अपि कुशली महाराजश्चन्द्रमौलिः, अन्ये च राजपुरुषाः ?

चन्द्रवर्णः—भगवन् निगमगुरो! सर्व एव कुशलिनो भगवदनुग्रहेण ।

कुलपतिः—किमनुष्ठानस्सम्प्रति महाराजः ?

चन्द्रवर्णः—साम्प्रतं तु राज्याभिषेकसंभृतिनिरतो महाराजः ।

प्रियमित्रः—जैसी गुरुदेव की आज्ञा ।

(प्रवेश कर के)

चन्द्रकेतुः—भगवन्, ये मेरे पिता जी के प्रियमित्र चन्द्रवर्ण जी आप को अभिवादन करते हैं ।

कुलपतिः—(ब्रह्मचारियों सहित अभ्युत्थान करके) महाराज के प्रियमित्र! आप का कल्याण हो । इस आसन पर विराजिए ।

(सब यथा योग्य आसन पर बैठते हैं)

कुलपतिजीः—महाराजा के एक मात्र प्रेमभाजन चन्द्रवर्णजी! महाराज चन्द्रमौलि एवं अन्य राजपरिवार प्रसन्न तो है न ?

चन्द्रवर्णः—भगवन् निगम गुरो! आपकी दया से सब आनन्द है ।

कुलपतिः—महाराज आज कल किस कार्य्य में व्यस्त हैं ?

चन्द्रवर्णः—इस समय तो राज्याभिषेक की तैयारियों में लगे हुए हैं ।

कुलपतिः—तत्कदा माङ्गलिकलग्नं राज्याभिषेकस्य ?

चन्द्रवर्णः—अद्यैव ।

कुलपतिः—किमद्यैव ?

चन्द्रवर्णः—आम्, भगवन् । आम्, अद्यैव !

कुलपतिः—तर्हि आगम्यताम्, राजधानीं प्रति प्रतिष्ठामहे ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

[पञ्चमोऽङ्कः समाप्तः]

कुलपतिः—तो राज्याभिषेक का मंगल मुहूर्त कब है ?

चन्द्रवर्णः—आज ही ।

कुलपतिः—क्या सचमुच आज ही ?

चन्द्रवर्णः—जी हाँ, आज ही ।

कुलपतिः—अच्छा तो चलिए राजधानी को चलें ।

(सब जाते हैं)

पञ्चमाङ्क समाप्त.

षष्ठोऽङ्कः ।

[ततः प्रविशति–आसनासीनो राजा चन्द्रमौलिः, अमात्यमणिर्मणिचन्द्रश्च]

राजा—अमात्यमणे! वत्सस्य चन्द्रकेतो राज्याभिषेकं श्रुत्वा—अपि प्रसीदन्ति सर्वाः सुप्रजसः प्रजाः ?

अमात्यः—देव! किमुदीर्यताम्, देवस्य प्रकृत्या तैस्तैश्चाभिरामगुणैरनुगुणं विनयोज्ज्वलं सुनयशालिनं सुतनयं स्वराज्येऽभिषेक्ष्यमाणं निशम्य प्रसीदन्तितरां प्रकृतिसरलास्तरलमतयः प्रकृतयः ।

राजा—(सहर्षोल्लासम्) किं प्रसीदन्तितराम् ।

अमात्यः—आम्, प्रसीदन्तितराम् ।

राजा—अमात्यमणे! अपि पुरवासिजनैस्तोरणमालापताकादिभिरलङ्कृतानि निजनिजमन्दिराणि ?

छठाँ अंक ।

(आसन पर बैठे राजा चन्द्रमौलि और मंत्रीश्वर मणिचन्द्रका प्रवेश)

राजाः—मंत्रीश्वर, राजकुमार चन्द्रकेतु के राज्याभिषेक को सुनकर सब प्रजा प्रसन्न तो है न?

मंत्रीः—महाराज, क्या कहूँ? आप के स्वभाव एवं अन्यान्य गुणों के अनुकरण करने वाले, विनय शाली नीतिमान् श्रेष्ठ पुत्र के राज्यारोहण का वृत्तान्त सुनकर सरल मति प्रजा खूब प्रसन्न हो रही है ।

राजाः—(आनन्द सहित) क्या सचमुच प्रजा आनन्दित है?

मंत्रीः—हाँ, महाराज ठीक प्रसन्न हो रही है ।

राजाः—मंत्री जी, क्या नगर वासियों ने वन्दनवार, माला, पताका आदि से अपने अपने घरों को सजा लिया है?

अमात्यः—देव ! यदैव देवेन राजकुमारस्य राज्याभिषेकमहोत्सव आघोषितः पौरेषु तदैव पुरवासिभिः सकलेयं पूरलङ्कृता तोरणस्रगादिभिः समुच्छ्रितवैजयन्तीश्रिया च श्रीनगरीयं पुलकाञ्चितेव संवृत्ता, सर्वतश्च मङ्गलतूर्यप्रमुखवाद्यानां सुखश्रवा मधुरा ध्वनयः श्रूयन्ते ! तथाहि—क्वचिच्चारुहासिनीनां सुवासिनीनां श्रुतिमञ्जुला मञ्जुमङ्गलगीतयः, क्वचिद् ब्रह्मविदां ब्राह्मणानां पुण्या ब्रह्मनादाः, क्वचिन्मृदङ्गानां निनादाः, क्वचिद् रणन्तीनां विपञ्चीनां पञ्चमरागभङ्गतरङ्गाः पथि पथि केतकवासवासितवाससां मनोहरवेषजुषां पुरवासिनां सञ्चारः, चत्वरे चत्वरे निगमोपदेशामृतवर्षिणां साधूनां सदुपदेशाः, गृहे गृहे होमहुतसुगन्धिद्रव्याणां सुगन्धाः, प्रत्यङ्गणं रम्भास्तम्भदलकन्दलाः, प्रतिस्तम्भमाम्रकिसलया आलम्बिताः, प्रतिद्वारं कुसुममालिकाः, एवं प्रभूतप्रमोदपूरपूरितान्तःकरणैः पौरगणैः समलङ्कृताखिलेयं राजधानी ।

मंत्रीः—महाराज, जिस समय आपने राजकुमार के राज्याभिषेक महोत्सव की घोषणा नगर वासियों में की, उसी समय यह संपूर्ण नगर वन्दनवार माला, एवं उड़ती हुई ऊंची ऊंची पताकाओं की शोभा से अलङ्कृत श्री नगर राजधानी मानों हर्षातिरेक से रोमाञ्चित हो गयी ! चारों ओर मंगल बाजे तुरही आदि की कर्ण मधुर मीठी आवाजें सुनाई पड़ रही हैं, कहीं सुन्दर वस्त्रावृता, सुगन्धि मञ्जुला, मीठी हास्य वाली ललनाओंके श्रुतिमधुर गीत, कहीं वेदवित् ब्राह्मणों के पवित्र मंत्रोच्चारण, कहीं बजती हुई वीणाओं के मधुर पञ्चम राग का आलाप हो रहा है । प्रत्येक रास्ते पर केतकी के इत्र से सुवासित वस्त्र वाले मनोहर वेषधारी नागरिकों का गमनागमन, चौराहों पर वेद के उपदेश रूपी अमृत को बरसाने वाले संन्यासियों के उपदेश, घर घर हवन में डाली गयी सुगन्धित चीजों की सुगन्धियाँ, आँगन आँगन में केले के स्तंभ और प्रत्येक कदली स्तंभ पर आम्र के पत्तों की मालाएँ लटक रही हैं, सब दर्वाजों पर फूलों की मालाएँ झूल रही हैं, इस प्रकार अत्यन्त आनन्द भरे हुए हृदय वाले नागरिकों ने [illegible] राजधानी अलंकृत कर दी है ।

राजा—तर्हि अवसितोऽखिलः खलु राजाभिषेकानुरूपः संभारः ?

अमात्यः—देव ! समाप्तः सकलः सम्भृतिविधिः ।

(प्रविश्य)

दौवारिकः—जयतु जयतु देवः । देव ! एष हिमालयपर्वतोपत्य-कारण्यवर्तिनस्तपोवनस्याधिपतिः शिष्येणाग्निवर्णेन सह मुनीन्द्रः समुपस्थितः । निशम्य प्रभुः प्रमाणम् ।

राजा—(सादरम्) किं तपोवनाधिपतिर्मुनीन्द्रः ?

दौवारिकः—अथ किम् ।

राजा—अमात्यमणे ! तदुपेत्य भवानमुं तपोनिधिं नैगमेन विधिना पुरस्कृत्य प्रवेशयतु सत्वरम् ।

अमात्यः—यदादिशति देवः ।

(इति दौवारिकेण सह निष्क्रान्तः)

राजाः—तो क्या राज्याभिषेक की कुल तैयारियाँ हो चुकीं ?

मंत्रीः—हाँ महाराज, सब तैयारियाँ हो चुकीं ।

(प्रविष्ट होकर)

द्वारपालः—महाराज की जय हो । महाराज, हिमालय पर्वत की तलहटी के तपोवन निवासी तपस्वियों के अधिपति मुनीन्द्र अग्निवर्ण शिष्य सहित आ गए । महाराज की जैसी आज्ञा ।

राजाः—(आदर सहित) क्या तपोवन के अधिपति मुनीश्वर मुनीन्द्र आगए ?

द्वारपालः—जी हाँ ।

राजाः—मंत्री जी, तो आप उन के पास जाकर उन तपोनिधिको अर्घ्य पाद्यादि से सत्कृत कर लिवा लाइए ।

मंत्रीः—महाराज की जैसी आज्ञा ।

(द्वार पाल के साथ जाता है)

राजा—(सहर्षम्)

तपःक्रमाक्रान्तिनिबर्हितांहसां
समूलमुन्मूलितषड्द्विषां वृषः ।
पदारविन्देन पवित्रयन्नयं
नयन्मुदं नः समुपैति मन्दिरम् ॥ १ ॥

[ततः प्रविशति—अमात्येनोपदिश्यमानवर्त्मा शिष्येणाग्निवर्णेनानुगम्यमानो मुनीन्द्रः]

मुनीन्द्रः—अमात्यवर्य ! सम्प्रति महाराजं चन्द्रमौलिं विलोकयितुं विलोचनयुगलीयमस्माकं सुतरां व्याकुलीभवति ।

अमात्यः—(सविनयम्) निगमागमगुरो मुनिमौक्तिकमणे ! धन्यः खल्वयं महाराजश्चन्द्रवंश्यो यो भवादृशैर्महानुभावैर्मनस्विपुङ्गवैरपि—अतिमात्रमनुरुध्यते ।

राजाः—(हर्ष सहित)

तपश्चरण की परंपरा से पाप को भस्म करने वाले मूल सहित काम क्रोधादि छ शत्रुओं को उन्मूलन करने वाले मुनीश्वर अपने चरणारविन्दों से हमारे राष्ट्र को पवित्र करते हुए एवं प्रसन्न करते हुए हमारे मन्दिर में आ रहे हैं ॥ १ ॥

(शिष्य अग्निवर्ण को लेकर मुनीन्द्र मंत्री के साथ आते हैं)

मुनीन्द्रः—मंत्री जी, इस समय महाराज चन्द्रमौलि के देखने के लिए मेरी आँखें उत्कण्ठित हो रही हैं ।

मंत्रीः—(विनय सहित) वेदशास्त्रोपदेष्टा मुनिवर, धन्य हैं ये चन्द्रवंशीय महाराज चन्द्रमौलि जो आप जैसे महातेजस्वी मुनिवरों से भी सम्मानित होते हैं ।

मुनीन्द्रः—धन्य एवैष महानुभावो महीश्वरः ।

यदीयतेजःकिरणास्तमःकिरं
किरन्ति दूरं स्म भयंकरा नरम् ।
अशेषभूमण्डलचारिणोऽरयो
रयोत्तमं शिश्रियिरेऽद्रिकन्दराम् ॥ २ ॥

अपि च ।

वलीयसो यस्य यशोलिनर्तकी
सहास्यलास्यं नु वितन्वती सती ।
सतीजनानां हृदयं दरादरं
पुरः पुरः सा प्रससर्प कुर्वती ॥ ३ ॥

किञ्च ।

महीमहेन्द्रान्नरचन्द्रनन्दना-
न्न भूभुजो ये नहि भेजिरे भयम् ।
विपक्षपक्षाश्रितभूभुजां भुजां
भुजाबलेनायमखण्डयन्मुहुः ॥ ४ ॥

मुनीन्द्रः—महातेजस्वी महाराज सम्मान के पात्र ही हैं ?
जिस राजा की प्रभावशाली तेज किरणें, पापी मनुष्यों को दूर भगा देती हैं, और जिस के कारण पृथ्वी भर के शत्रु गण को शीघ्रही गिरि–कन्दरा का आश्रय लेना पड़ा ॥ २ ॥
जिस प्रताप शाली राजा की कीर्ति रूपी नटी, संग्राम में आगे आगे हाव भाव सहित नृत्य करती हुई, पतिव्रताओं के हृदय को भय कंपित करती है। तथाः—॥ ३ ॥
नरचन्द्रों के आनन्ददाता, इस पृथ्वी के वल्लभ से, कोई भी नृपति भय भीत न हुआ हो, ऐसा न था, क्यों कि शत्रुओं के पक्ष लेने वाले राजाओं की भुजाओं को यह राजा अपने भुजबल से बार बार मर्दन करता ही रहता था ॥ ४ ॥

अमात्यः—(सादरं-सविस्मयं च) भगवन्, तपोनिधे ! नूनमगम्यानुभावो विश्रुतप्रभावश्चासौ महीपतिः । तथाहि—

सदर्थिकल्पद्रुम एष नन्दनो
ननन्दनस्थोऽपि ननन्द सोऽर्थिनम् ।
तमस्तमस्सार्थमनर्थपातिनं
त्विषामिवेशस्समपातयत्स्वयम् ॥ ५ ॥

अपि च ।

समं समागम्य सरस्वती स्वयं
द्वयं सदा श्रीश्च मुदाऽपि चञ्चला ।
परस्परं प्रेमपरम्परां परां
वितन्वदेतं नृपतिं निषेवते ॥ ६ ॥

मुनीन्द्रः—(सस्मितम्)

पटीयसीं यस्य विमृश्य शेमुषीं
दवीयसी भूर्यविमृश्यकारिता ।
तदारिबुद्धिं समुपेत्य वाञ्छितां
स्ववाञ्छितं क्रीडितमाततान सा ॥ ७ ॥

मंत्रीः—(आदर पूर्वक आश्चर्य्य से) हे तपोनिधे, सचमुच यह राजा अवर्णनीय सामर्थ्य एवं विख्यात प्रभाव वाला है । क्योंकिः—
नन्दन वनमें न रहने पर भी यह राजा नन्दनवनस्थ कल्पद्रुम की तरह उत्तम याचकों की इच्छा पूर्ण कर प्रसन्न करता था, और अनर्थ फैलाने वाले पापरूपी अन्धकार को सूर्य्य के तुल्य स्वयं नाश करता था । औरः—॥ ५ ॥
सरस्वती और चंचला लक्ष्मी भी अपने परस्पर विरोध को छोड़कर आनन्द पूर्वक एक दूसरे को चाहती हुई इस राजा की सेवा करती हैं ॥ ६ ॥
मुनीन्द्रः—(विहँसते हुए) इस राजा की बुद्धि को चतुरजान कर अविवेकिता स्वयमेव खिसक कर मनोऽनुकूल शत्रु की बुद्धि के पास जाकर इच्छानुसार क्रीडा कर रही थी ॥ ७ ॥

(पुरोऽवलोक्य–सहर्षम्)

अमन्दमानन्दकरीं गिरां झरीं
झरीं सुधानामपि तां सुधाकरीम् ।
निशम्य गम्भीरमनोरमां प्रियां
न मोहमापुर्मुनयोऽपि तेऽस्य किम् ॥ ८ ॥

[इति परिक्रामन्ति]

राजा—(ससम्भ्रममासनादुत्थायोपगम्य च) भगवन् जगद्वन्दनीयगुरो ।

दयालवः प्राणिषु सौख्यहेतवः
समस्तसंसारहितं चिकीर्षवः ।
भवन्ति वन्द्या नहि कस्य साधवः
सदा सदन्तःकरणप्रवृत्तयः ॥ ९ ॥

[इति चन्द्रमौलिरभिवादयते]

मुनीन्द्रः—स्वस्ति भवते जगन्महनीयकीर्तये जगदेकवीराय ।

[इति सर्वे यथोचितमुपविशन्ति]

(आगे देख कर आनन्द सहित)

इस राजा की गंभीर, मनोरम, प्रिय एवं अमन्द आनन्द वर्षिणी, अमृत से भी अधिक मीठी वाणी को, सुनकर मुनिगण भी क्या मुग्ध नहीं होते? ॥८॥

(आगे चलते हैं)

राजाः—(आदर पूर्वक जल्दी से आसन से उठकर पास जाता है ।) भगवन् जगत् वन्दनीय गुरुदेव !

दयालु, प्राणियों के सुख के कारण, सकल संसार के कल्याण करने की इच्छा वाले एवं अन्तःकरण की श्रेष्ठ प्रवृत्तियों वाले साधु पुरुष भला किस के वन्दनीय न होंगे? ॥ ९ ॥

(चन्द्रमौलि प्रणाम करते हैं)

मुनीन्द्रः—जगत् में उत्तम प्रभाव वाले एवं पृथ्वी के एक मात्र वीर महाराज का अखण्ड कल्याण हो ।

(सब यथा योग्य आसन पर बैठते हैं)

राजा—(सप्रश्रयम्) भगवन् मुनीन्द्र ।

कच्चिन्मुनीनां व्रतिनां व्रतानि
निरन्तरायाणि निरन्तरं वः ।
भवन्ति कच्चिन्नियमेन तेषां
कर्माणि निर्वाणकराण्यजस्रम् ॥ १० ॥

मुनीन्द्रः—(विहस्य)

प्रकृतिमण्डलपालनतत्परे
रिपुकुलद्रुमदावहुताशने ।
अशुभमस्तु कुतः क्षितिरक्षिणि
भवति राजनि राजनियामके ॥ ११ ॥

राजा—भगवन् ! सर्वमेतद् भवतां तपोधनानां सत्यव्रतजुषां जगन्मङ्गलैकचेतसां सत्त्वगुणभृतां संयमीश्वराणां तपसां फलितमेव । वयन्तु केवलमत्र निमित्तमात्रम् । कुतः

पवित्रयन्तो यतयो भवादृशो
महीतलं सर्वमिदं महोदयाः ।

राजाः—(विनय पूर्वक) गुरुदेव,
व्रतधारी आप मुनियों के धर्मानुष्ठान सदा निर्विघ्नता पूर्वक तो संपादन होवे हैं, और आप की मोक्ष प्राप्ति की साधन भूत योगादि क्रिया कुशलता पूर्वक होती है न? ॥ १० ॥

मुनीन्द्रः—(मुस्करा कर) प्रजावर्ग के लालन पालन में दत्तचित्त, शत्रु समूह रूपी तरुवृन्द के लिए दावाग्नि तुल्य, राजाओं को वश में रखने वाले आप जैसे पृथ्वी पालक होने पर हमारा अमंगल कैसे हो सकता है? ॥ ११ ॥

राजाः—गुरुदेव, आप जैसे तपोधन, सत्यव्रतधारी, संसार–कल्याण में निरत, सत्वगुणी, संयमशील महात्माओं के तपश्चरण का ही यह फल है; हम तो केवल निमित्तमात्र हैं, क्योंकिः—

आप जैसे अभ्युदयकारी, गुणों से सुशोभित, श्रेष्ठ कीर्तिशाली, संन्यासी संपूर्ण

गुणाभिरामा अभिरामकीर्तयो
भ्रमन्ति लोकोपकृतेः कृतेऽनिशम् ॥ १२ ॥

मुनीन्द्रः—चन्द्रवंशदीपक ! तथापि लोकोत्तरगुणबीजालीनां भवानेव नवाङ्कुरकाननस्थली । तथाहि—

अधर्मनाशव्रतिमौक्तिकैर्व्रतिन् !
विगुम्फितायां स्रजि नायकायसे ।
त्वमद्य दीनार्तितपःशमक्रिया—
विधौ विधिज्ञेन्द्र ! बलाहकायसे ॥ १३ ॥

राजा—(सविनयम्) भगवन् महासत्वचूडामणे ! यदन्यत् किञ्चिद् वदति तत्रेश्वरो भवान् । तत्रभवतः कुलपतेर्विनेया इति महतीयं नः प्रतिष्ठा ।

मुनीन्द्रः—राजर्षे ! महर्षि कुलपतिमानेतुं कोऽपि प्रहितः ?

राजा—आम्, वत्सश्चन्द्रकेतुरेव कुलपतिमानेतुं प्रहितः ।

भुवन-मण्डल को पवित्र करते हुए हमेशा लोकोपकार करते रहते हैं ॥१२॥

मुनीन्द्रः—हे चन्द्रकुल के दीपक, तो भी लोकोत्तर गुण रूपी बीजों के आप ही अंकुरित करने वाले स्थान हैः—क्योंकिः—

हे व्रतधारी राजन् ! अधर्मनाश के व्रती रूपी मौक्तिकमालामें आप मुख्य मणि तुल्य हैं, और गरीबों के दुःख रूप ताप निवारण में आप बादल के तुल्य हैं ॥ १३ ॥

राजाः—(विनय सहित) हे महातपस्वी, आप जो कुछ कहें वह ठीक ही है। यह सब पूज्यवर कुलपतिजी की ही प्रतिष्ठा है, क्यों कि हम उनके शिष्य हैं।

मुनीन्द्रः—राजर्षि, महर्षि कुलपति जी को लेने के लिए किसी को भेजा है ?

राजाः—जी हाँ, पुत्र चन्द्रकेतु को ही कुलपति जी को लेने के लिए भेजा है।

(नेपथ्ये)

इमा रम्या धारा विमलसलिलाः शीतलतरा—
गिरीणां शृङ्गेभ्यो हिमकुलवृतेभ्यो द्रुमभृताम् ।
पतन्त्यो नेत्राणामहह जनयन्त्येव सततं
महानन्दं नृणां द्रुतमथ हरन्तीह हृदयम् ॥ १४ ॥

राजा—(आकर्ण्य–सहर्षम्) मुनीन्द्रं प्रति–अये स एष चन्द्रवर्ण-चन्द्रकेतुवसुचन्द्रैः सह विमानाधिरूढो भगवान् कुलपतिः समायाति । तदागम्यताम् , वत्सस्य राज्याभिषेकसम्पादनाय राज्याभिषेकमण्डपं प्रति प्रतिष्ठामहे । (इति निष्क्रान्ताः)

[ततः प्रविशति विमानाधिरूढो भगवान् कुलपतिः, चन्द्रवर्णः, चन्द्रकेतु-वसुचन्द्रौ च]

कुलपतिः—(समन्तादवलोक्य–सविस्मयम्)

अहो महीयान् महिमा महीयसां
गुरोर्दवीयान् सुगिरां पटीयसाम् ।

(पर्दे में)

पवित्र जल वाले, अति शीतल मनोहर धारा युक्त ये झरने बरफ से घिरे हुई वृक्षावली से मण्डित पर्वतों की चोंटियों से गिरते हुए मनुष्यों की आँखों को महा आनन्द प्रदान करते हैं, और हृदयों को हर लेते हैं ॥ १४ ॥

राजाः—(सुनकर आनन्द से मुनीन्द्र के प्रति)
ओ हो ! वेही ये कुलपति जी श्री चन्द्रवर्ण चन्द्रकेतु और वसुचन्द्र के साथ विमान पर आ रहे हैं, तो आइए पुत्र के राज्याभिषेक के लिए मण्डप की ओर चलें । (सब जाते हैं)

(विमान पर चढ़े कुलपति जी चन्द्रवर्ण, चन्द्रकेतु और वसुचन्द्र के साथ आते हैं)

कुलपतिः—(चारों ओर देख कर आश्चर्य से)
अहो ! महामहिमा शाली प्रभु की महिमा महान् है । चतुरकवियों की वाणी

निसर्गरम्या नवसर्गसुन्दरी
यदीयनिम्ना रचना विमोहिनी ॥ १५ ॥

अपि चायम्—

जगत्पतिर्विश्वजगल्ललामया
तया प्रकृत्या जगदादिभूतया ।
विमोहयन्मर्त्यमनन्तनैपुणी
प्रकाशयत्यद्भुतकौशलेश्वरः ॥ १६ ॥

चन्द्रवर्णः—(उत्तरस्यां हरिति निर्वर्ण्य) भगवन् ! अवलोकयन्तु भवन्तः परमहरितरमणीयानामदभ्रहिमनिवहभृतां वसुन्धराधराणामभ्रंलिहां शिखराणामुत्तरोत्तरमुत्तुङ्गतराणि मण्डलानि ।

यानि खलु—

मैत्रीमुख्यैर्मुदितमनसो योगभाजो यतीन्द्राः
क्षीणक्लेशाः परममहसः प्राप्य योगं सबीजम् ।
प्रज्ञालोके प्रकृतिपुरुषान्यत्वबोधं विदित्वा
शान्तस्वान्तास्तमपि सुतरां रोद्धुकामाःश्रयन्ते ॥ १७ ॥

से अवर्णनीय है, क्यों कि उस की रचना स्वभाव सुन्दरी प्रकृति को प्रतिक्षण नवीनता देनेवाली तथा विश्वविमोहिनी है ॥ १५ ॥

और यह अद्भुत रचनाचतुर जगत् पति, अखिल जगत् की भूषण रूपा, सृष्टि की उपादान कारण भूता प्रकृति से त्रिभुवन को मोहित करता हुआ अपनी अनेक रचना चातुरी को दिखाता रहता है ॥ १६ ॥

चन्द्रवर्णः—(उत्तर दिशा की ओर देख कर)

गुरुदेव, देखिए अत्यन्त हरियाली से लुभावने, हिम–मण्डित पर्वतों की गगन-स्पर्शिनी चोटियाँ एक के ऊपर एक ऊँची ऊँची दिखाई दे रही हैं ।

जिन शिखरों पर मैत्री करुणादि भावनाओं से प्रसन्न मन वाले, अविद्यादि क्लेशों से रहित, अत्यन्त तेजस्वी, योगी यतीन्द्र गण सबीज समाधि के द्वारा प्रकृति एवं पुरुष की भिन्नता समझकर शान्त चित्तसे निर्बीज समाधि की सिद्धि के लिए निवास करते हैं ॥ १७ ॥

कुलपतिः—(विमानवेगं रूपयन्–सहर्षम्) वत्स चन्द्रकेतो ! पश्य इयं प्रालेयशीतलजला विमला समुल्लोलल्लोलकल्लोलमालाकुला शैलजालशिलाशकलावलीं प्लावयन्ती सकलकलं निनदन्ती भगवती चन्द्रभागा मुष्णाति नश्चक्षूंषि ।

चन्द्रकेतुः—(अग्रे दर्शयन्) भगवन्! पश्य–सेयं पुण्यसलिला भगवती—

तरुवररुचिरायां पर्वतोपत्यकायां
यदिह लसति रम्यं कुण्डमाबद्धकूलम् ।
झषनिवहपरीतान्निर्यदम्भःकदम्बात्
प्रभवति हि वितस्ता तुङ्गकल्लोलहस्ता ॥ १८ ॥

वसुचन्द्रः—(दूरमङ्गुल्या दर्शयन्—सहर्षातिरेकम्) राजकुमार! पश्य—

नानानगेन्द्ररमणीयनगेन्द्ररम्या
काम्याम्बुजन्मकमनीयसरोवरेण्या ।

कुलपतिः—(विमान के वेग को देखते हुए आनन्द से) पुत्र चन्द्रकेतो, देखो वरफ से शीतल जल वाली, उठती हुई चञ्चल तरङ्ग मालाओं से क्षुब्ध, पर्वतों की चट्टानों को भिगोती हुई, घोर–ध्वनि करती हुई निर्मल चन्द्रभागा हमारी आँखों को हरण कर रही है ।

चन्द्रकेतुः—(आगे दिखाता हुआ) भगवन् इस पवित्र जला नदी को देखिए । वृक्ष वरों से शोभित इस पर्वत की तलेटी में, जो यह बँधा हुआ सुन्दर कुण्ड विराजमान है, मछलियों के समूह से व्याप्त, एवं निकलते हुए प्रवलतर पानी के प्रवाह वाले उस कुण्डसे बड़ी बड़ी तरङ्ग रूपी हाथों वाली वितस्ता नदी निकल रही है ॥ १८ ॥

वसुचन्द्रः—(अंगुलियों से दूरकी ओर दिखाता हुआ हर्ष से) देखिए:— नाना तरुवरों से ढके हुई पर्वत मालाओं से सुन्दर, श्रेष्ठ कमलों से मण्डित सरोवर युक्त, पहाडी ढङ्ग से बसी हुई, और अपने सौंदर्य्य से अन्य नगरियों

श्रीनिर्जितान्यनगरी नगरीतिबद्धा
सेयं विभाति नगरी न गरीयसी किम् ॥ १९ ॥

चन्द्रकेतुः—(कुलराजधानीं निरीक्ष्य-कुलपतिं प्रति) भगवन् !
पश्य-पुरस्तादियम्—

नदीं वितस्तामभितस्तटस्थिता
विशालशालाङ्गनहर्म्यसंकुला ।
नभस्स्पृशन्मन्दिरराजिराजिता
विराजते श्रीनगरी गरीयसी ॥ २० ॥

कुलपतिः—(विमानावनतिं नाटयित्वा-सहर्षस्मितम्) अये, सम्प्राप्तैवा-स्माभिरियं भगवती कुलराजधानी । या—

असंख्यकार्तस्वररत्नभासुरा
महाजनावासविभूषितान्तरा ।
विभक्तघण्टापथवर्द्धितच्छविः
सुपण्यवीथीलसितान्तरान्तरा ॥ २१ ॥

को पराजित करनेवाली, यह श्री नगर नामक नगरी क्या सब से उत्तम नहीं मालूम होती है ? ॥ १९ ॥

चन्द्रकेतुः—(राजधानी देख कर कुलपति से)
गुरुदेव, देखिए यह आगेः—
वितस्ता नदी के दोनों तटों पर विराजित, बड़े बड़े आँगन वाली हवेलियों से घिरी हुई गगन स्पर्शी राज महलों से चुम्बित श्रेष्ठ काश्मीर की यह राजधानी विराज रही है ॥ २० ॥

कुलपतिः—(विमान को जरा नीचे कर हर्ष से)
अहा ! इस ऐश्वर्य्य शालिनी राजधानी में हम लोग आगए, जोः—
असंख्य स्वर्ण जटित रत्नों से प्रकाशित, महाजनों के आवास से विभूषित मध्यभाग वाली, चौड़ी चौड़ी वड़ी सड़कों से वढ़ी हुई शोभा वाली, बीच बीच में सजी हुई दुकानों से शोभित, ॥ २१ ॥ और—

अपि च!

सुरम्यलीलागृहदीर्घिकाञ्चिता
कृताभिषेका जलसेचकैर्जनैः।
तरङ्गरिङ्गत्तरिराजिहारिणी
मनोरमारामविराममोदिनी ॥ २२ ॥

चन्द्रवर्णः—(सहर्ष—कुलपतिं प्रति) निरीक्ष्यतामिदानीमस्याः सरिदुभयतटशालिन्याः सरोवरनिकरपरिराजिन्या राजधान्या राज्याभिषेकोत्सवकृता परमा शोभा। तथाहि—सेयम्—

समुल्लसत्तोरणपुष्पमालिका
नदन्मृदङ्गा चलवैजयन्तिका।
रणद्विपञ्चीकलभङ्गसङ्गिनी
विशोभते मङ्गलगीतनादिनी ॥ २३ ॥

कुलपतिः—(विलोक्य—साश्चर्यस्मितम्) अहो, प्रतिपथं श्रेणिबद्धस्थितानां रुचिराणां सफेदातरुविसराणामिव करकलितचन्द्रहासानां

सुन्दर क्रीडा गृह की बावलियों से मनोहर, जल से शान्त धूल वाली सड़कों से युक्त, तरङ्गों में चलती हुई नौकाओं की परंपराओं से सुहावनी एवं सुन्दर बाग बगीचों से मनोरंजन कारिणी है ॥ २२ ॥

चन्द्रवर्णः—(हर्ष सहित कुलपति से)
अब इस समय इस नदी के दोनों तटों पर विराजित सरोवर मण्डलों से मण्डित राजधानी की राज्याभिषेक समय की सजावट देखिए।

क्योंकिः—
सर्वत्र तोरण और फूलों के वन्दन वार लगे हैं। मृदंग और वीणा की मधुर ध्वनि सुनाई दे रही है, मन्दिरों पर ध्वजायें फहरा रही हैं, तथा सुवासिनी सुन्दरियाँ मंगल गीत गा रही हैं ॥ २३ ॥

कुलपतिः—(देख कर आश्चर्य्य से) अहा! हरेक रास्ते पर पंक्ति बद्ध खड़े हुए सुन्दर सफेदा नामक वृक्षों की पंक्ति के तुल्य, हाथमें तलवार लिए, हास्य

सहासवदनानां धृतवीरश्रीविग्रहाणां वीराणां पङ्क्तिभिर्मण्डिताया राजधान्या वरिमा। तथाहि—

सुरभिकुसुममालावासितावासमाला—
विविधभवनशालाचन्द्रशालाविशाला।
विहितपटहनादा ब्राह्मणब्रह्मनादा
विजितपरपुरश्रीश्रीयुता राजधानी ॥ २४ ॥

अपि च।

निगमपण्डितमण्डलमण्डिता
यतिमुनीन्द्रकवीन्द्रविदीपिता।
स्वरियमिन्द्रपदं भजते नृपो—
विबुधतां विबुधा ध्रुवमेष ते ॥ २५ ॥

(विमानावनतिनाटितकेन—सविस्मयस्मितम्) अये। तदिदं—विविधपुष्पमालालङ्कृतं विचित्रचित्रविचित्रितं बहुविधरत्नखचितकाञ्चनस्तम्भरुचिरं रम्भादलकन्दलपरीतं परिलसत्पताकामालं स्फटिकम-

---

रञ्जित मुखवाले, मूर्तिमती वीरता के समान वीरों की पंक्ति से मण्डित राजधानीकी महत्ता दृष्टि गोचर हो रही है।

क्योंकि:—अनेक भवनों की अटारियाँ एवं चन्द्रशालायें सुगन्धित फूल की मालाओं से जहाँ सजी हुई हैं, जहाँ अनेक मंगल बाजे बज रहे हैं, एवं ब्राह्मणों के वेद मंत्रोचारण से निनादित, दूसरी नगरियों को अपनी शोभा से जीतने वाली यह राजधानी, वेदज्ञ पण्डितों के मण्डलों से मण्डित, एवं यति मुनीन्द्र तथा कवीन्द्रों से देदीप्यमान होने के कारण स्वर्गपुरीसी दिखाई दे रही है; इस लिए यहाँ का राजा इन्द्र है और विद्वद्गण निश्चित देवही हैं २४—२५

(विमान को थोड़ा नीचे की ओर लाते हुए विस्मय से) अहा! वही यह विविध फूल मालाओं से अलङ्कृत, अनेक चित्रों से आभूषित, रत्न जड़े हुए सोने के स्तंभों से सज्जित, केलों के थंभों से घिरा हुआ, उड़ती हुई चारों

णिशिलाजटितभित्तिजालं विशालं सुन्दरं राज्याभिषेकमन्दिरम्।
(पुरोऽवलोक्य–पुनः सहर्षोल्लासम्) कथं स एवायं सामात्यः समुनीन्द्रोऽस्मान् प्रतीक्षमाणः—

सामन्तमौलिमणिमण्डलरश्मिजालैः–
संचर्चिताङ्घ्रिकमलोऽप्रतिवार्यवीर्यः।
राज्याभिषेकविहिताखिलसंविधानः–
क्षत्रावतंस इह तिष्ठति चन्द्रमौलिः॥ २६॥

[इति विमानं स्तम्भयित्वा सर्वेऽवतरणं रूपयन्ति]

[ततः प्रविशति राजा चन्द्रमौलिः, अमात्यमणिर्मणिचन्द्रः, सशिष्योमुनीन्द्रश्च]

राजा—(राजसभामन्दिरं विलोक्य–सहर्षम्) अहो मनोभिराममिदं राजसभासदनम्। तथाहि–

मनोज्ञवेषोज्ज्वलदेहभाजां
राज्ञां सहस्रैः परिवीतमञ्चम्।
वाचामधीशैर्विबुधैः कवीशै–
रध्यासितं राजसदः सदस्यैः॥ २७॥

ओर ध्वजाओं से शोभित, संगमरमर की भीत वाला विशाल और सुन्दर राज्याभिषेक का मण्डप है। (आगे देख कर अति आनन्द से) वही ये मंत्री तथा मुनीन्द्र सहित महाराज चन्द्रमौलि हमारी प्रतीक्षा में खड़े हैं।
जिनके चरणारविन्द माण्डलिक राजाओं के शिरस्थित मुकुटों के रत्नों की किरणों से सदा पूजित होते रहते हैं, जो वीरता में अप्रतिम हैं, तथा क्षत्रियों के जो कुलभूषण हैं, मालूम होता है, ऐसे इन महाराज ने राज्याभिषेक की कुल तैयारी करली है॥ २६॥

(विमान ठहरा कर सब उतरते हैं)

(राजा चन्द्रमौलि, मंत्री मणिचन्द्र एवं शिष्य सहित मुनीन्द्र का प्रवेश)

राजाः—(राजसभाभवन को देख कर आनन्द से)
अहा! यह सभा मण्डप कितना मनोहर दीख रहा है। क्योंकिः—
सुन्दर वेष से कान्तिमय शरीर वाले सैकडों राजे, वाणी पर अधिकार रखने वाले विद्वान और कविगणोंसे इस के सब मञ्च भरे हुए हैं॥ २७॥

अमात्यः—(कुलपतिं विलोक्य–राजानं प्रति) देव ! स एष जगन्म-
हनीयकीर्तिः सौम्यमूर्तिर्मनस्विपुङ्गवो भगवान् कुलपतिश्चन्द्रव-
र्णादिभिः समं समुपस्थितः ।

राजा—(विलोक्य–सादरम्)

परोपकारव्रतमण्डनस्रजा
विभूषितोदारशरीरवल्लरीम् ।
अयं द्विजानां पतिरग्रतो दधन्–
मनोऽम्बुधिं नो नयति प्रफुल्लताम् ॥ २८ ॥

(इति सहर्षमुपगम्य–कुलपतिं प्रति) भगवन् महनीयानुभाव प्रशा-
न्तपावनीयाकृते । अभिवादये ।

कुलपतिः—स्वस्ति महाराजाय महामहिमशालिने ।

चन्द्रकेतुः—(उपसृत्य) तात ! प्रणमामि ।

मंत्रीः—(कुलपति को देख कर राजा से) महाराज, वही ये त्रिभुवन विख्यात कीर्तिशाली, सौम्यमूर्ति, और विचारक भगवान् कुलपति चन्द्रवर्णादि के साथ आगए हैं ।

राजाः—(आदर सहित देख कर)

परोपकार-व्रत-पुष्पमाला से जिनकी विशाल देह रूपी लता सजी हुई है, ऐसे ये द्विजराज हमारे हृदय रूपी समुद्र को हर्ष तरङ्गित कर रहे हैं ॥ २८ ॥
(सहर्ष कुलपति जी के पास जाकर) महा तेजस्वी, प्रशान्त मूर्ति भगवन्, प्रणाम करता हूँ ।

कुलपतिः—महा महिमा शाली महाराज का कल्याण हो ।

चन्द्रकेतुः—(पास जाकर) पिताजी प्रणाम ।

राजा—वत्स ! आयुष्मान् भूयाः । (इति निर्भरमालिङ्ग्य—शिरस्युपाघ्राय च) स्वगतम् ।

स्पर्शोऽस्य चन्द्रकरचन्दनशीतलोऽयं
वत्सस्य चन्द्रवदनस्य च चन्द्रकेतोः ।
आनन्दवृन्दमनुभावयतीश्वरस्य
साक्षात्कृतस्य नियतं जगदेकयन्तुः ॥ २९ ॥

(प्रकाशम्) वत्स ! भगवानेष निःशेषभुवनमाननीयो मुनीन्द्रो वन्दनीयः, (इति विसृजति)

(चन्द्रकेतुर्मुनीन्द्रं वन्दते)

मुनीन्द्रः—वत्स चन्द्रकेतो ।

मेधाविनस्ते चिरजीविता स्याद्
धाराप्रवाही महिमा वितन्यात् ।
व्रजेषु सूच्चैः पदमाजुषस्व
तत्त्वं नृपाणाश्चिरमाशिषो नः ॥ ३० ॥

राजाः—पुत्र, आयुष्मान् हो ।

(गाढ़ आलिङ्गन करके और शिर सूँघ कर मन में) चन्द्रमा के समान मुख वाले पुत्र चन्द्रकेतुका यह चन्द्र और चन्दन सा शीतल स्पर्श, मानों समाधि द्वारा साक्षात् किए हुए ब्रह्मानन्द के आनन्द को अनुभव कराता है ॥ २९॥

(प्रकट) पुत्र, सकल भुवन वन्दनीय भगवान् मुनीन्द्र को वन्दन करो ।

(चन्द्रकेतु मुनीन्द्र को प्रणाम करता है)

मुनीन्द्रः—पुत्र चन्द्रकेतु, तुम मेधावी होकर चिरजीवी बनो, निरन्तर अपनी महिमा फैलाओ, और राज मण्डल में उच्च पद धारण करो, यही हमारा आशीर्वाद है ॥ ३० ॥

कुलपतिः—(मुनीन्द्रं विलोक्य—सहर्षम्) अये, स एष—

ब्रह्मतेजोमयीं लक्ष्मीं बिभ्रता वपुषा लसन् ।
ब्रह्मविद्याविदां वर्यो मुनीन्द्रः पावनाकृतिः ॥ ३१ ॥

[कुलपतिमुनीन्द्रौ—समुपगम्यान्योन्यमुपचरतः]

मुनीन्द्रः—भगवन् वेदगुरो । सम्प्रति को विलम्बः, माङ्गलिकलग्नमिदमतिक्रामति ।

कुलपतिः—न कोऽपि विलम्बः, (इति परिक्रम्य-चन्द्रकेतुं प्रति) वत्स ! एहि, समलङ्कुरु सिंहासनमिदम् ।

(चन्द्रकेतुस्तथा करोति । कुलपतिः कार्तस्वरैः कलशैः कुमारचन्द्रकेतुं मन्त्रपूर्वकमभिषिञ्चति । स्वयञ्चास्य राजा चन्द्रमौलिः सुन्दरेण रत्नहारेण कण्ठमलङ्करोति । अन्ये च सर्वे पुष्पवृष्टिं रूपयन्तः सर्वाङ्गचुम्बितभूमयः प्रणमन्ति ।)

(नेपथ्ये मङ्गलगीतिः । नान्दीवाद्यानि च वाद्यन्ते)

कुलपतिः—(मुनीन्द्र को देख के आनन्द से)
अहा वही यहः—
शरीर से ब्रह्मवर्चस्विनी कान्ति को धारण करते हुए, ब्रह्म विद्या जानने वालों में श्रेष्ठ पवित्र मूर्ति मुनीन्द्र हैं ॥ ३१ ॥

(कुलपति और मुनीन्द्र एक दूसरे से मिलकर आदर सत्कार करते हैं)

मुनीन्द्रः—भगवन् वेद गुरो, अब क्या देर है, माङ्गलिक वेला जा रही है ।

कुलपतिः—नहीं देर कुछ नहीं । (घूम कर चन्द्रकेतु से) पुत्र, आओ इस सिंहासन को अलंकृत करो ।

(चन्द्रकेतु सिंहासन पर बैठता है, कुलपति सोने के घड़ों से राजकुमार का मंत्रों द्वारा अभिषेक करते हैं, और स्वयं राजा चन्द्रमौलि सुन्दर रत्नों के हार से चन्द्रकेतु का गला सजाते हैं एवं दर्शक गण पुष्पवृष्टि करता हुआ प्रणाम करता है)

(पर्दे में मंगल गायन होता है, और मंगल वाजे वजते हैं)

कुलपतिः—(सहर्षम्) वत्स चन्द्रकेतो ! सम्प्रति—

मोदन्तां त्वयि शासति प्रकृतयः क्षोणीमिमां क्ष्मापतौ
संतुष्यन्तु बुधाः प्रशान्तमनसः सौजन्यवृत्तेन ते ।
एधन्तां श्रुतिधर्मवर्त्मत इमा राज्यश्रियस्तेऽनिशं
गीयन्तां तव कीर्त्तयश्च कविभिश्चन्द्रोज्ज्वला निर्मलाः ॥३२॥

अन्ये—तथास्तु । इत्यनुमोदन्ते ।

कुलपतिः—(सहर्षप्रसादम्) वत्स ! किं ते भूयः प्रियमुपहरामि ।

चन्द्रकेतुः—भगवन् ! किमतः परमपि प्रियमस्ति । आत्मप्रसादात्—

सकलाः सकलाः सुखप्रदा
मयि विद्या निहिता हिता हि ताः ।
भवता भवतापहन्निदं
रुचिरं राजपदं भजाम्यहम् ॥ ३३ ॥

कुलपतिः—(हर्ष सहित) पुत्र चन्द्रकेतु !
पृथ्वी के पति तुम्हारे शासन काल में प्रजा आनन्दित रहे, तुम्हारी सौजन्यमयी सदाचार वृत्ति से शान्त मन वाले विद्वत् गण प्रसन्न रहें, वेदानुकूल आचरण करते हुए यह तुम्हारी राज्य लक्ष्मी निरन्तर बढ़े, चन्द्रतुल्य उज्वल तुम्हारी निर्मल कीर्ति का कवि गण गायन करें ॥ ३२ ॥

दर्शकगणः—तथाऽस्तु, कह कर अनुमोदन करते हैं ।

कुलपतिः—(हर्ष पूर्वक कृपा से) पुत्र, और मैं क्या तुम्हारा प्रियाचरण करूं?

चन्द्रकेतुः—गुरुदेव, इस से और अधिक प्रिय क्या है ? आप की कृपा से:—
संपूर्ण सुख कारक कलायें, एवं हितकारी विद्यायें मुझे प्राप्त हुई हैं, और यह सुन्दर राज पद मिला है । तो भी यह भरत वाक्य सफल हो ॥ ३३ ॥

तथापीदमस्तु ।

अवन्तु वरमतयः ।

प्रजाः स्वाः सुतमिव नरपतयः ॥ ध्रुवम् ॥

समये समये सिञ्चतु मघवा ।

धरणिमिमामखिलाम् । निःशसं—

धरणिमिमामखिलाम् । अवन्तु०—॥ १ ॥

धान्यधनादिभिरम्बुधिरशना ।

कलयतु रुचिमतुलाम् । इलेयं—

कलयतु रुचिमतुलाम् ॥ अवन्तु० ॥ २ ॥

विद्याम्भोनिधितुङ्गतरङ्गैः ।

विदधतु धियममलाम् । बुधास्ते—

विदधतु धियममलाम् ॥ अवन्तु०—॥ ३ ॥

सूक्तिसुधामकरन्दममन्दम् ।

रसयतु कविरखिलान् । नृभृङ्गान्—

रसयतु कविरखिलान् ॥ अवन्तु० ॥ ४ ॥

श्रुतिसिन्धुस्थितशान्तिसुधापाः ।

सुखमरुदनुभविलाः । प्रजाः स्युः—

सुखमरुदनुभविलाः ॥ अवन्तु० ॥ ५ ॥

उत्कृष्ट मति राजा गण अपनी प्रजा को पुत्रवत् पालन करें, समय समय पर इन्द्र इस पृथ्वी मण्डल को जल से सींचे । समुद्र पर्य्यन्त यह पृथ्वी धन धान्य से समृद्ध हो । विद्वद् गण विद्या समुद्र के तरङ्गों से अपनी बुद्धि निर्मल करते रहें । कवि गण नर रूपी भ्रमरों को काव्यामृत रूपी पुष्प रस चखावें । वेद रूपी सिन्धु के किनारे बैठी हुई शान्ति रूपी सुधा का पान

परमानन्दकन्दपरमेन्द्रे ।

भवतु रता विमला । सुजनता–

भवतु रता विमला ॥ अवन्तु० ॥ ६ ॥

कुलपतिः—एवमस्तु ।

[इति निष्क्रान्ताः सर्वे]

इति श्रीमदार्यवर्यजगज्जीवनात्मजस्य श्रीसरस्वतीनन्दनस्य श्रीसत्यव्रताग्रजस्य कविरत्नमेधाव्रतस्य कृतौ प्रकृति-सौन्दर्ये षष्ठोऽङ्कः समाप्तः ॥

[इति षष्ठोऽङ्कः]

कर के प्रजा सुख रूपी वायु का सेवन करे । और सारी जनता भक्ति भाव से परमानन्द कन्द परब्रह्म में लीन हो जाय ।

कुलपतिः—एवमस्तु.

(सब जाते हैं)

इति भारद्वाजगोत्रीयश्रीमत्प्रभुप्रसादशर्मसूनुना योगिवर्यश्रीस्वामी-विशुद्धानन्दसरस्वतीशिष्येण मगधदेशसंभवेन वेदतीर्थश्रीश्रुत-बन्धुशास्त्रिणा प्रणीतोऽयमनुवादस्समाप्तिमगात् ॥

छठाँ अंक समाप्त.

सरस्वतीस्तवनम् ॥

[१]

सरस्वति ! कथं स्तवं रचयितुं तवाहं प्रभुः
प्रभूतमसकृद् यतोऽसि निगमैस्सुगीतस्तवा ।
तवाङ्घ्रियुगलारविन्दमकरन्दवृन्दं सदा
सदानतसुरैर्मुदा रसयितुं मिलिन्दायितम् ॥

[२]

रुचिरगुणमणीनां कान्तिभी राजमानं
नवनवरसवृन्दैश्चान्दनैः सिच्यमानम् ।
जननि ! तव सुधाक्तं सुन्दरं मन्दिरं ते
कविकृतकलगीतं प्राप्य नन्दन्ति देवाः ॥

[३]

सति नरपतिरत्ने विक्रमादित्यवीरे
वररुचिनवरत्नं शासति प्राज्यराज्यम् ।
जननि ! वरमखण्डं ताण्डवं नाटयन्ती
वदनसदनरङ्गं प्रालसो मण्डयन्ती ॥

[४]

भाषोत्तंसे त्वदमृतसरःसूक्तिमुक्ताभिरामं
कामं काम्यं बुधवरगणा हंसलीलायमानाः ।
दुष्प्रापं तद् विमलमतयः प्राप्य ते पुण्यवन्तः
सन्तः सन्ति प्रथितयशसो धन्यधन्या अवन्याम् ॥

सरस्वतीनन्दनः

कविरत्नं मेधाव्रताचार्यः ।

ग्रन्थकर्ताके अन्यान्य ग्रन्थ.

कुमुदिनीचन्द्र—(संस्कृत भाषा का मौलिक एवं अत्यन्त सरस उपन्यास) पृष्ठ संख्या ३५०, मूल्य २)

दिव्यसङ्गीतामृत—(सङ्गीत शिक्षाकी उत्तम पुस्तक) मूल्य

दयानन्दलहरी—(गङ्गालहरी के समान संस्कृत का ललित काव्य मूल्य ≈)

गिरिराजगौरव—(हिन्दीका वर्णनात्मक काव्य) मूल्य ≡)

ब्रह्मचर्य्यशतकम्— मूल्य

पद्यतरङ्गिणी—(चारसौ संस्कृत श्लोकों का हिन्दी अनुवाद सहित सुन्दर काव्य छपने वाला है)

रुक्मिणीहरण नाटक—हिन्दी में (अप्राप्य)

ग्रन्थ मिलने का पता—

पं० सत्यव्रत जगजीवन आर्य्य.

येवला

नासि[illegible]